दव्वसंगहो

ग्रन्थकर्त्ता

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

टीकाकार

परम पूज्य विख्यात-टीकाकार, आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज

अनुवादिका

पूज्या गणिनी-आर्यिका श्री सुविधिमती माताजी

दव्वसंगहो

ग्रन्थकार – परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज

टीकाकार – परम पूज्य सिद्धान्तवेत्ता, आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज

अनुवादिका – पूज्या गणिनी-आर्यिकाश्री, सुविधिमती माताजी

सम्पादक – परम पूज्य पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

आवृत्ति :- १ **प्रति :-** १००० **प्रकाशन :-** ४-५-२०१७

अवसर

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध परम्परा के चतुर्थ-पट्टाधीश, परम पूज्य आर्षमार्गशिरोमणि, जिनशासनप्रदीप, विद्या-वाचस्पति, तपश्चर्या-चक्रवर्ती, परम्पराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज की परम शिष्या पूज्या गणिनी-आर्यिकाश्री सुविधिमती माताजी का पच्चीसवाँ दीक्षादिवस

पुनः प्रकाशन हेतु अर्थसहयोग- रुपये ४०/- मात्र

प्राप्तिस्थान –

भरतकुमार इन्दरचन्द पापड़ीवाल

३-४-९, पानदरिबा रोड़, अप्पा हलवाई के पास

औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ४३१००१

फोन = ०२४०-२३६८७८५

मोबाईल = ०९३७११४११०४

sanmati28@yahoo.com

suvidhiguru@gmail.com

suvidhiguru@yahoo.in

Website : www.jaingranths.com

Website : www.vimalsagargranths.com

DAVVASAN>GAHO

GAN>IN>EE-ARYIKASHREE SUVIDHIMATI MATAJI

समर्पित

जिनके सानिध्य में मैं
स्त्रीपर्यायविच्छेदकारिणी,
भवसन्तापहारिणी,
सर्वतः क्षेमकारिणी
आर्यिकापद की साधना कर रही हूँ,
जिनके आशीर्वाद से
मुझे रत्नत्रय का प्रसाद प्राप्त हुआ
और जिनका मार्गदर्शन
मेरे लिए हस्तावलम्बनस्वरूप है
उन परम पूज्य अंकलीकर परम्परा के चतुर्थ
पट्टधर, शब्दशिल्पी, काव्यविधाता,
आगमनिष्ठ,
प्रख्यात अनुवादक, श्रमणेश्वर,
विद्या-वाचस्पति, अचिन्त्यप्रज्ञाशक्तिधारक,
पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज
के परम पवित्र कर-कमलों में ---

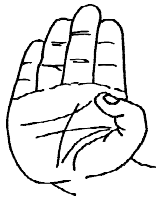

आशीर्वाद

ग्रन्थ निर्ग्रन्थों के चक्षु हैं। यही कारण है कि आचार्यश्री कुन्दकुन्द जी महाराज ने कहा है-**आगम चक्खू साहु।**

ग्रन्थ निर्ग्रन्थ संस्कृति के आभूषण हैं। ग्रन्थ दिग्वासशासन के प्राण हैं। ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति की सुरभि को दिग्दिगन्त में प्रसारित करने वाले अनुपम कुसुम हैं। ग्रन्थ भव्य जीवों की आत्मशक्ति को जागृत करने वाले दिव्य मन्त्र हैं। ग्रन्थों की शरण में गए बिना कषायों की ग्रन्थियों का विलय नहीं हो सकता।

नवदेवताओं में जिनवाणी को भी एक देवता माना गया है। देव-शास्त्र और गुरु, जो सम्यग्दर्शन के आयतन हैं, उनमें जिनवाणी को गुरु से भी पूज्य स्थान प्राप्त है। अतः ग्रन्थों की सुरक्षा एवं प्रकाशन में सभी को रुचि लेना चाहिए।

प्राचीन ग्रन्थों के संरक्षण एवं प्रकाशन करने के कार्य में मेरा सहयोग करने वाली गुरुभक्त, गणिनी-आर्यिका सुविधिमती माताजी ने आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज द्वारा रचित **दव्वसंगहो** नामक ग्रन्थ की आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज द्वारा रचित टीका का अनुवाद कर अत्यन्त प्रशस्त कार्य किया है।

माताजी श्रुतसेवा कर अचिन्त्य श्रुतज्ञान को प्राप्त करें तथा उस श्रुतज्ञान के माध्यम से उन्हें केवलज्ञानोत्पत्ति हों-यही आशीर्वाद।

ग्रन्थ के प्रकाशक, द्रव्यदाता आदि समस्त प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगियों को भी मेरा आशीर्वाद।

यह ग्रन्थ यावच्चन्द्रदिवाकर भव्य जीवों का मार्गदर्शन करता रहे-यही मंगलकामना।

-परम्पराचार्य सुविधिसागर

दो शब्द

परम पूज्य गुरुदेव, आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज का कथन है– **जिनालयों का जिर्णोद्धार करना जितना आवश्यक है, उतना ही प्राचीन ग्रन्थों का संरक्षण एवं प्रकाशन करना आवश्यक है।**

१९९९ का वर्षायोग बिहारप्रान्तीय आरा नगरी में हुआ। वर्षायोग से कुछ दिन पूर्व वहाँ की सुप्रसिद्ध संस्था **श्री जैन बाला विश्राम** में संघ विराजमान था। वहाँ वयोवृद्ध विद्वान श्री गोकुलचन्द जी जैन गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। चर्चा के समय उन्होंने उनके द्वारा सम्पादित परन्तु अनुवादरहित ग्रन्थ **दव्वसंगहो** का उल्लेख किया। गुरुदेव ने उनसे ग्रन्थ की प्रति प्राप्त कर उसकी प्रतिलिपि तैयार कर ली।

संघीय स्वाध्याय के रूप में ग्रन्थ का दो/तीन बार स्वाध्याय हुआ। गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया कि मैं इसका राष्ट्रीय भाषा (हिन्दी) में अनुवाद करूँ। मैं गुरुदेव के आदेश एवं शुभ आशीर्वाद के बल से ही इस अनुवाद कार्य को सम्पन्न कर सकी हूँ।

आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज द्वारा लिखित यह टीका अत्यन्त संक्षिप्त है। तथापि, टीका के माध्यम से ग्रन्थ के हार्द तक पहुँचना सरल हो जाता है। इस टीका की सर्वतोप्रमुख विशेषता यह है कि इसके स्वाध्याय से पाठक ग्रन्थ के पाठान्तरों से परिचित हो जाता है।

इस टीका में ग्रन्थ में आगत समस्त पारिभाषिक शब्दों की संक्षिप्त एवं सरल परिभाषा भी पाई जाती है।

मैंने टीकार्थ को शब्दशः किया किन्तु भावार्थ का विशेष विस्तार नहीं किया। फिर भी आवश्यक विस्तार किया ही है।

मैं संस्कृतभाषा की विशेष ज्ञाता नहीं हूँ। अतः सम्भव है कि कुछ त्रुटियाँ इस अनुवाद में अवशिष्ट रही हो। प्रबुद्ध पाठक मुझे उनसे परिचित कराने का कष्ट करें। यह अनुवाद यदि पाठकों का श्रुतज्ञान विकसित करने में सहयोग कर सका तो मुझे अतिशय हर्ष होगा।

–आर्यिका सुविधिमती

प्रस्तावना

आचार्य श्री कुन्दकुन्द जी महाराज का स्पष्ट उद्घोष है–**दंसण मूलो धम्मो।** सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुए बिना जीव सच्चा धार्मिक नहीं हो सकता। जिन प्राणियों को कषायों की लपटें धू–धू कर जला रही हैं, उनके लिए सम्यग्दर्शन परम शीतलता है। जो जीव विषयरूपी भुजंग से दंशित हैं, उनके लिए सम्यग्दर्शन नागदमणि है। जन्म, जरा और मरणरूपी रोग को नष्ट करने के लिए सम्यग्दर्शन रामबाण औषधि है। सम्यग्दर्शन परम रत्न है। जिस जीव के पास सम्यग्दर्शनरूपी अनमोल निधि है, उसी जीव का जीवन सफल है तथा धन्य है।

आचार्यश्री कुलभद्र जी महाराज कहते हैं–

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य, निवासो दिवि राजते।।

(सारसमुच्चय = १३९)

अर्थात् :- सम्यग्दर्शनसहित नरक में वास करना श्रेष्ठ है, किन्तु सम्यक्त्वहीन जीव का स्वर्ग में निवास करना भी शोभा को प्राप्त नहीं होता।

ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थों पर सम्यक् श्रद्धान करना परमावश्यक है।

सम्यग्दर्शन को परिभाषित करते हुए आचार्य श्री कुन्दकुन्द जी महाराज लिखते हैं–

छ दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो।।

(दर्शनपाहुड =११९)

अर्थात् :- छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्व कहे गये हैं। उनके स्वरूप का श्रद्धान करने वाला जीव सम्यग्दृष्टि है-ऐसा जानना चाहिए।

उन द्रव्यदिकों का समीचीन श्रद्धान तभी हो सकता है, जब उनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होगा। द्रव्यों के और तत्त्वों के स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए तत्त्वार्थसूत्र, पंचास्तिकाय आदि अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। **दव्वसंगहो** नामक इस सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भी यही है।

ग्रन्थ का नाम :

प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम **दव्वसंगहो** है। इस नाम की उद्घोषणा स्वयं ग्रन्थकर्त्ता ने ग्रन्थान्त में की है। यथा-

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं।।५८।।

अर्थात् :- अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ कहा गया है उसे शास्त्रज्ञ, समस्त दोषों से रहित मुनिनाथ शोधन करें।

यह ग्रन्थ **द्रव्यसंगग्रह** इस नाम से सुप्रसिद्ध है। मूल ग्रन्थ में यद्यपि ग्रन्थ का स्पष्ट नामोल्लेख **दव्वसंगहं** किया गया है, तथापि समस्त हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद तथा ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका के साथ इस ग्रन्थ के जितने संस्करण प्राप्त होते हैं, उनमें **द्रव्यसंग्रह** नाम प्रकाशित किया गया है। प्राकृत ग्रन्थों को प्रायः संस्कृत अथवा हिन्दी नाम से प्रकाशित करने की परम्परा कब से प्रारम्भ हुई? यह अन्वेषणीय है। हाँ-यह सत्य है कि समयपाहुड, पवयणपाहुड, अट्ठपाहुड, तिलोयसार आदि अनेक ग्रन्थ अपने संस्कृत नाम से ही लब्धप्रतिष्ठ हैं।

अस्तु,

वही सुप्रसिद्ध कृति अपने मूल नाम के साथ प्रकाशित हो रही है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय :

ग्रन्थ का अन्तः परीक्षण करने पर यह सुस्पष्ट होता है कि ग्रन्थकर्त्ता ने **पंचास्तिकाय** ग्रन्थ का अनुसरण किया है। पंचास्तिकाय तीन अधिकारों में विभक्त है और यह ग्रन्थ भी। दोनों ग्रन्थों के तीनों अधिकारों का वर्ण्य विषय भी समान है। अतः इस ग्रन्थ को **लघुपंचास्तिकाय** कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस ग्रन्थ का पहला अधिकार द्रव्याधिकार एवं पंचास्तिकायाधिकार है। इस अधिकार में सर्वप्रथम जीव का लक्षण एवं उसके नौ अधिकारों का वर्णन किया गया है। चौदह गाथाओं में जीवद्रव्य का वर्णन करने के उपरान्त तेरह गाथाओं में शेष अजीव द्रव्यों का वर्णन तथा अस्तिकायों का वर्णन किया गया है।

नवपदार्थाधिकार नामक दूसरे अधिकार में कुल ग्यारह गाथायें हैं। जीव और अजीव पदार्थ का कथन पहले अधिकार में किया गया है। अतः उन दोनों को छोड़ कर आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन सात पदार्थों का वर्णन इस अधिकार में किया गया है। इस अधिकार की विशेषता यह है कि प्रत्येक पदार्थ के द्रव्य और भाव ये दो भेद करके प्रत्येक की परिभाषा एवं उनके भेद-प्रभेदों का वर्णन सूत्र शैली में किया गया है।

अन्तिम बीस गाथाओं के माध्यम से मोक्षमार्ग का वर्णन किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज ने **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** इस सूत्र के माध्यम से मोक्ष के मार्ग का कथन किया है। उसी मार्ग को प्रस्तुत ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता ने **सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे** ऐसा प्रतिपादित किया है।

यह त्रितायात्मक मोक्षमार्ग व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय से उन तीनों से युक्त एक शुद्धात्मा ही मोक्षमार्ग है। अतः मुमुक्षु के लिए आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ ध्येय है।

छद्मस्थ जीव को दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है। उसके दोनों उपयोग केवलज्ञानी के समान युगपद् नहीं होते।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ-साथ सम्यक् चारित्र मोक्षमार्ग का अनिवार्य हेतु है। उसके अभाव में मोक्ष होना सम्भव नहीं है। व्रत-समिति व गुप्तिरूप तेरह प्रकार का व्यवहार चारित्र है और आत्मा में रममाण होकर सम्पूर्ण बाह्य-आभ्यन्तर क्रियाओं का निरोध करना निश्चय चारित्र है।

दोनों प्रकार के मोक्षमार्ग की सिद्धि के लिए ध्यान आवश्यक होता है। इस ग्रन्थ में पदस्थ धर्म्यध्यान के ध्येयभूत अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं का स्वरूप वर्णित है।

अन्त में, उत्कृष्ट ध्यान के लिए ग्रन्थकार का कथन है–**अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।** आत्मा जब आत्मा में रत हो जाता है, तब उत्तम ध्यान होता है।

इस प्रकार मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने के उपरान्त ग्रन्थकर्त्ता ने अपने अभिमान का परिहार करते हुए कहा है–निर्दोष, पूर्ण श्रुतधर मुनिश्रेष्ठ, मुझ अल्पश्रुतधर नेमिचन्द्र मुनिराज के द्वारा लिखे गए इस द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ का शोधन करें।

इस प्रकार कुल अट्ठावन गाथाओं में संक्षिप्त रीति से सम्पूर्ण आगमिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों का सार भरा हुआ है।

उल्लेखनीय है कि पहले और तीसरे अधिकार में ग्रन्थकर्त्ता ने नयशैली का प्रयोग कर ग्रन्थ की प्रामाणिकता व विषय की विशदता को कायम किया है। शैली की सहजता, सरलता और लावण्यता सामान्य पाठक को भी अपनी और आकर्षित करने में समर्थ है।

सारांश के रूप में इतना ही कथन करना पर्याप्त होगा कि इतने विशद अर्थ से परिपूर्ण, इतना लघुकाय एवं लोकप्रिय अन्य कोई ग्रन्थ प्राप्त होना कठिन है।

अवचूरि टीका :

अवचूरि का अर्थ सार या निचोड़ है। संक्षिप्त टीका का नाम ही अवचूरि टीका है। इस टीका के द्वारा मूल ग्रन्थ की गाथाओं के अर्थ को संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया गया है। अतः टीका का अवचूरि नाम सार्थक है।

इस टीका के रचयिता कौन हैं? इस विषय में पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ के सम्पादक मौन हैं।

एक बार मैं हजारीबाग के बाड़म बाजार दिगम्बर जैन मन्दिर में स्थित स्वाध्याय भवन का अवलोकन कर रहा था। वहाँ मुझे १२-१०-१९६७ का **जैनसन्देश शोधांक** प्राप्त हुआ।

उसमें पृष्ठ सात से तेरह तक **द्रव्यसंग्रह, उसके कर्त्ता और टीकाकार** इस शीर्षक से एक लेख प्रकाशित है। इस लेख के लेखक पण्डितप्रवरश्री कैलाशचन्द जी शास्त्री हैं। पृष्ठ ११ पर आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज द्वारा लिखी गई **संस्कृतवृत्ति** के कुछ उद्धरण (गाथांक दस, तीस, छप्पन

आदि के) दिए गए हैं। उन समस्त उद्धरणों का प्रस्तुत कृति से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह टीका आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज द्वारा ही लिखी हुई है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज कौन थे? जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (पुस्तक = ३) में प्रभाचन्द्र नामक नौ श्रुतधरों का वर्णन मिलता है। परन्तु, उनमें कोई अवचूरि टीका के रचयिता हैं–ऐसा स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

आचार्य श्री प्रभाचन्द्र जी महाराज की पंचास्तिकाय टीका भी है। उस ग्रन्थ की गाथा छब्बीस एवं इस ग्रन्थ की गाथा दो की टीका का मिलान करने पर पूर्ण साम्यता दृष्टिगोचर होती है। इससे यह अनुमान करना उचित जान पड़ता है कि **पंचास्तिकाय-टीका** के निर्माता आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज ही इस टीका के रचयिता हैं।

इनका अनुमानित समय विक्रम संवत् १३१९ है।

ग्रन्थ के पाठभेद :

दव्वसंगहं की बृहत् टीका आचार्यश्री ब्रह्मदेव जी महाराज द्वारा लिखी हुई है। उस टीका में ग्रन्थ के पाठ का विशेषरूप से अवलोकन किया गया है। उस टीका के साथ इस टीका की तुलना करने पर अनेक पाठभेद प्राप्त होते हैं। कुछ पाठभेद अत्यन्त सामान्य हैं। प्राकृत व्याकरण के विकल्पात्मक नियमों से उनकी सिद्धि होती है। वे पाठभेद अर्थों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं करते।

यथा–

धम्मोवएसणो = धमोवदेसणे, **हवइ =** हवे, **विवहारा =** ववहारा, **आयासो =** आयासं इत्यादि।

कुछ पाठभेद अर्थभेद की भी सूचना देते हैं। यथा –

झाणे झाऊण = झाणे पाउणदि (गाथा = ४७)

संति जदो ते णिच्चं = सति जदो तेणेदे (गाथा = २४)

तं सम्मं परम चारित्तं = तं परमं सम्मचारित्तं (गाथा = ४६)

पाठभेदों की संख्या अधिक है। अतः हमने प्रत्येक गाथा के नीचे प्राप्त पाठभेदों का उल्लेख किया है। इससे पढ़ने वालों को अत्यधिक सुविधा होगी

तथा इस प्रकार का सत्प्रयत्न शोधार्थियों के शोधकार्य में भी सहायक बन सकेगा।

ग्रन्थ की भाषा :

प्राकृत भाषा क्षेत्रीय प्रभावों के कारण अनेक भागों में विभक्त है। यथा- अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, पैशाची आदि। दिगम्बर जैन परम्परा के ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत में लिपिबद्ध हैं। शौरसेनी प्राकृत में जो नियम हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में दिगम्बर जैनागम के अनेकों शब्दों में नाविन्य है। जैसे-अर्द्धमागधी व शौरसेनी प्राकृत में **सवण्णु** शब्द का प्रयोग पाया जाता है, जबकि जैन ग्रन्थ में **सव्वण्हु** शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

यही कारण है कि दिगम्बर परम्परा के प्राकृत ग्रन्थों की भाषा का अध्ययन करने के उपरान्त डॉक्टर पिशेल ने इस भाषा को **जैन शौरसेनी** यह विशेष नाम प्रदान किया है। संस्कृत के नाटकों में भी शौरसेनी भाषा प्रयोग में आई है।

अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि **दव्वसंगहो** ग्रन्थ की भाषा **जैन शौरसैनी** है। यह भाषा अत्यन्त मधुर है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ को पुनः पुनः पढ़ने के लिए मन लालायित रहता है।

सम्पादन का आधार :

इस टीका का नाम हमने आरा जाने से पूर्व कभी सुना नहीं था। आरा में वर्षायोग करने से पूर्व कुछ दिन हम **जैन बाला विश्राम** में भगवान बाहुबली के दर्शनों का लाभ ले रहे थे। वहाँ पर डॉक्टर गोकुलचन्द जी जैन ने हमें यह प्रति स्वाध्यायार्थ प्रदान की। इस **दव्वसंगहो** का प्रकाशन **सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी** ने किया है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन डॉक्टर गोकुलचन्द जी जैन एवं डॉक्टर ऋषभचन्द जी जैन के सम्पादन में १९८९ में हुआ था। यह प्रकाशन हिन्दी अनुवाद से युक्त नहीं है। इसकी प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि इसे जैन सिद्धान्त भवन से प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार से सम्पादित किया गया।

हमने भी भवन से मूल प्रति प्राप्त की। प्रति अत्यन्त जीर्ण है। दस इंच लम्बे, चार इंच चौड़े प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग दस पंक्तियाँ हैं। यह मूल प्रति नहीं है, अपितु प्रतिलिपि है।

प्रकाशित प्रति एवं पाण्डुलिपि प्रति इन दो प्रतियों के आधार पर इस कृति का सम्पादन एवं अनुवाद किया है।

अनुवादपद्धति :

अनुवादिका का यह प्रथम एवं श्रेष्ठ प्रयत्न है। उन्होंने अन्वयार्थ, टीकार्थ के बाद संक्षिप्तरूप से भावार्थ देकर ग्रन्थ को अधिक विस्तृत एवं बोझिल नहीं होने दिया। गाथा के प्रत्येक शब्द का अर्थ सुस्पष्ट हो जाने के कारण प्राथमिक शिष्यों के लिए यह कृति अत्यन्त उपकारक सिद्ध होगी।

ग्रन्थकर्त्ता :

इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज हैं, यह बात ग्रन्थ की अट्ठावनवीं गाथा में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ होने से निर्भ्रान्त है।

आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज कौन थे? इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद हैं।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (पुस्तक २) में पृष्ठ ६२९ पर नेमिचन्द्र नामक चार आचार्यों का वर्णन है। यथा-

१. प्रभाचन्द्र क्र. १ के शिष्य व भानुचन्द्र के गुरु = ई. ७५६- ७६७.

२. आचार्यश्री अभयनन्दी जी सिद्धान्त-चक्रवर्ती के शिष्य तथा आचार्यश्री इन्द्रन्दी व आचार्यश्री वीरनन्दी जी के ज्येष्ठ गुरुभाई = ईसवी सन् की दसवीं सदी का उत्तरार्द्ध व ग्यारहवीं सदी का पूर्वार्द्ध।

३. आचार्यश्री नयनन्दी जी के शिष्य एवं आचार्यश्री वसुनन्दी जी के गुरु = समय वि. १०७५ से ११२५।

४. श्री ज्ञानभूषण जी भट्टारक के शिष्य = समय विक्रम की सोलहवीं सदी का उत्तरार्द्ध।

इन चारों में से दूसरे क्रमांक के नेमिचन्द्र इस ग्रन्थ के रचयिता हैं-ऐसी मान्यता सर्वमान्य थी, परन्तु कुछ विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया।

अतः ग्रन्थकर्त्ता आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज कौन हैं? इस विषय में दो मत हैं।

एक मतानुसार सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज ही प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्त्ता हैं तो दूसरे मतानुसार आचार्यश्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव

इस ग्रन्थ के कर्त्ता हैं। डॉक्टर नेमिचन्द्र जी शास्त्री प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्त्ता सिद्धान्तिदेव नेमिचन्द्र हैं-ऐसा मानते हैं। (देखो = तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग-१)

इस मत का खण्डन कर आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज ही प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता हैं-ऐसा डॉ. गोकुलचन्द जी ने सिद्ध किया है। (देखो = दव्वसंग्गहो की प्रस्तावना)

प्रिय पाठक बन्धुओ! दोनों मतों के तर्क हमने परिशिष्ट (दो) में दिए हैं। कृपया, उन्हें आप अवश्य पढ़ें।

मैं इतिहासविद् नहीं हूँ। अतः दोनों मान्यताओं में से कौनसी मान्यता सत्य है? इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

दव्वसंगहो ग्रन्थ की टीकाएँ :

अवचूरि टीका के अतिरिक्त मेरे अध्ययन में इस ग्रन्थ की दो महत्वपूर्ण टीकाएँ आई हैं।

१. आचार्यश्री ब्रह्मदेव जी महाराज ने बारहवीं सदी में इस टीका का प्रणयन किया है। यह विस्तृत टीका है। दसवीं गाथा के व्याख्यान में समुद्घात का, पैंतीसवीं गाथा के व्याख्यान में अनुप्रेक्षा एवं लोक का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रत्येक शब्द का व्याख्यान और फिर उसका विशेष वर्णन इस टीका का वैशिष्ट्य है। अनेक स्थलों पर शंका-समाधानरूप शैली का प्रयोग किया गया है। अनेक ग्रन्थों के उद्धरण टीका में दिए गए हैं। संक्षिप्ततः इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह टीका ग्रन्थ के मर्म को हस्तगत करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

२. पण्डितप्रवरश्री जयचन्द जी छाबड़ा ने इस टीका का निर्माण श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, वि. सं. १८६३ में किया है। यह भाषाटीका पद्यानुवाद युक्त एवं अत्यन्त सरल है।

इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ और उपटीकाएँ पाई जाती हैं। अनेक पद्यानुवाद भी दृष्टिगोचर होते हैं।

उपसंहार :

इस टीकाग्रन्थ की अनुवादिका बाल-ब्रह्मचारिणी, गणिनी-आर्यिकाश्री सुविधिमती माताजी हैं।

यद्यपि उनका यह पहला प्रयत्न है, किन्तु उन्होंने अपनी जिम्मेवारी का निर्वहण सफलतापूर्वक किया है।

हमें प्राप्त पाण्डुलिपि और प्रकाशित ग्रन्थ में अनेक व्याकरणिक और सैद्धान्तिक अशुद्धियाँ थी तथा अनेक स्थलों पर अपूर्णता का अनुभव भी प्रतीत हो रहा था। उस कमी को दूर करने का हमने प्रयत्न किया है। भावार्थ के उपरान्त विशेष इस शीर्षक से हमने कुछ नया प्रयत्न किया है, जो सुधी पाठकों को प्रिय लगेगा।

एक कार्य के सम्पन्न होने में अनेक निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है-यह सिद्धान्तवाक्य अक्षरशः सत्य है। प्रस्तुत संस्करण को तैयार करने में भी प्रत्यक्ष और परोक्षतः अनेक स्वाध्यायप्रेमियों का मार्गदर्शन, सहयोग, संशोधन प्राप्त हुआ है, जिनके प्रसाद से ही इस संस्करण को संशोधित रूप में पाठकों तक पहुँचाने का श्रेय प्राप्त हो रहा है। अतः सम्पूर्ण सहयोगियों को श्रुतचक्षुत्व की प्राप्ति हो-यही मंगल कामना।

यह ग्रन्थ भव्य जीवों के लिए मोक्षपथ का प्रदर्शन करता रहें-यही भावना।

– आचार्य सुविधिसागर

इस कलिकाल में संहनन की हीनता, असंयम की बहुलता आदि कारणों से चारित्र का परिपालन करना अत्यन्त कठिन हो चुका है। विषयवासना को बढ़ाने वाले संसाधन इतने सुलभ हैं कि उनके आकर्षण से बच पाना लगभग असम्भव है। ऐसे समय में संयमी जीवन को प्राप्त करना अतिशय दुर्लभ है।

वैभव हाथी के कान अथवा कौंए की आँखों के समान अत्यन्त चंचल है। कब आए और कब जाए? इसका कोई निश्चय नहीं है। पुण्य के फल से प्राप्त हुई विभूति को पुण्य करके ही स्थिर रखा जा सकता है। अतः गृहस्थों को सदैव यह प्रयत्न करना चाहिए कि वे अपने वैभव का सदुपयोग करें।

काल की विषमता, मोह की प्रबलता, आकर्षण वाले पदार्थों का बहुत्व, वैभव की अस्थिरता और पात्र की दुर्लभता देखते हुए वैयावृत्ति में मन को लगाना सद्गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

– आचार्य सुविधिसागर

आत्मकथ्य

संसार के महाचक्र से भव्य जीवों का समुद्धार करने वाले परमोपकारी भगवान महावीर की जय हो। मोहनिद्रा से सुषुप्त हुए जीव को जागृत करने वाले जिनवचनों की सदैव जय हो।

परम पूज्य ज्ञानध्यानतत्पर, मुनिकुंजर, चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) अपने युग के जेष्ठ एवं श्रेष्ठ आचार्य हुए। श्रमण-परम्परा की मर्यादा का संरक्षण करने वाले उस सम्यक्त्व-शिरोमणि की जय हो।

अपने जीवन के अन्त में उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य महावीरकीर्ति जी महाराज को अपना आचार्यपद प्रदान किया। गुरुप्रदत्त आचार्यपद के धारक, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज का यश समग्र संसार में सदा जयवन्त रहें।

परम पूज्य अष्टादशभाषी, तीर्थभक्त-शिरोमणि, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने अपने दायित्व का सम्यक् निर्वहण किया। अपने सल्लेखनाकाल को निकट जान कर उन्होंने अपने प्रशिष्य (परम पूज्य निमित्तज्ञान-शिरोमणि, आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज के शिष्य) श्री सन्मतिसागर जी महाराज को अपना आचार्यपद प्रदान किया। वे मेरे दादागुरु सदा जयवन्त रहें।

परम पूज्य तपस्वी सम्राट्, सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज अपने अनुभव से परम्परा की गरिमा को वृद्धिगत करते हुए आत्मसाधना की। उनके प्रिय शिष्यों में एक हैं-परम पूज्य आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज। गुरु ने उनकी सुयोग्यता को विलोक कर २०-६-२००४ के पावन दिन अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की। गुरु के कर-कमलों से आचार्यपद प्राप्त कर आप धर्मप्रभावना कर रहे हैं। परम पूज्य विद्या-वाचस्पति, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज की मैं शिष्या हूँ। गुर्वाज्ञा की पालना करने के लिए ही मैंने यह अनुवाद पूर्ण किया है।

यह ग्रन्थ यावच्चन्द्र दिवाकर जगत् में अवस्थित रह कर जगज्जनों के नीमिलित नेत्रों को उन्मिलित करता रहे।

अनुक्रमणिका

गाथांक	विषय	पृष्ठांक
१	मंगलाचरण	१
२	जीव के अधिकार	६
३	जीवाधिकार	८
४	उपयोग के तथा दर्शनापयोग के भेद	९
५	ज्ञानोपयोग के आठ भेद	११
६	उपयोगाधिकार का उपसंहार	१३
७	अमूर्तिकाधिकार	१४
८	कर्त्ताधिकार	१६
९	भोक्ताधिकार	१७
१०	स्वदेहपरिमाणाधिकार	१८
११	जीव की संसारी अवस्था	२२
१२	जीवों के चौदह जीवसमास	२२
१३	मार्गणा व गुणस्थान की अपेक्षा भेद	२७
१४	सिद्धत्व एवं ऊर्ध्वगमनाधिकार	३६
१५	अजीवद्रव्य के भेद	३९
१६	पुद्गल द्रव्य की पर्यायें	४०
१७	धर्मद्रव्य का लक्षण	४२
१८	अधर्मद्रव्य का लक्षण	४३
१९	आकाशद्रव्य का स्वरूप एवं भेद	४४
२०	लोक-अलोककाश का लक्षण	४५
२१	कालद्रव्य का लक्षण एवं भेद	४६
२२	निश्चयकाल का लक्षण	४७

गाथांक	विषय	पृष्ठांक
२३	अस्तिकाय के वर्णन की प्रतिज्ञा	४९
२४	अस्तिकाय का लक्षण	५०
२५	द्रव्यों की प्रदेशसंख्या	५१
२६	परमाणु के बहुप्रदेशित्व की सिद्धि	५३
२७	प्रदेश का लक्षण	५४
२८	पदार्थों का कथन करने की प्रतिज्ञा	५६
२९	भावास्रव एवं द्रव्यास्रव का लक्षण	५८
३०	भावास्रव के भेद	५९
३१	द्रव्यास्रव का लक्षण	६१
३२	बन्ध का स्वरूप	६२
३३	बन्ध के चार भेद	६३
३४	संवर का स्वरूप	६५
३५	भावसंवर के भेद	६६
३६	निर्जरा के भेद तथा लक्षण	६८
३७	मोक्ष का स्वरूप	७०
३८	पुण्य और पाप का लक्षण	७०
३९	व्यवहार एवं निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप	७२
४०	रत्नत्रययुक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण	७३
४१	सम्यग्दर्शन का स्वरूप	७४
४२	सम्यग्ज्ञान का स्वरूप	७५
४३	दर्शनोपयोग का स्वरूप	७६
४४	उपयोग का प्रवृत्तिक्रम	७९
४५	व्यवहार चारित्र का स्वरूप	८०
४६	निश्चय चारित्र का स्वरूप	८१
४७	ध्यान की प्रेरणा	८३
४८	ध्यान के उपाय	८४
४९	ध्यान करने योग्य मन्त्र	८५

गाथांक	विषय	पृष्ठांक
५०	अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप	८६
५१	सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप	८७
५२	आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप	८९
५३	उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप	९०
५४	साधु परमेष्ठी का स्वरूप	९१
५५	ध्यान, ध्याता और ध्येय का स्वरूप	९२
५६	परम ध्यान का स्वरूप	९३
५७	ध्यान के उपाय	९५
५८	ग्रन्थ का उपसंहार	९६

परिग्रह संकटों का कारण है

परिग्रह सम्पूर्ण विभावों का मूल है। परिग्रह का संग्रह करने के लिए मनुष्य अनेक प्रकार के आरम्भजनित कार्य करता है, जिससे षट्कायिक जीवों का घात होता है। परद्रव्य को ग्रहण करने के लिए झूठ भी बोलता है, अधिक संग्रह की इच्छा से मिलावट करना, कम तौलना आदि चौर्यकर्म भी करता है। दूसरे के द्वारा अपने धन का हरण होने पर परिग्रही क्रोध करता है। मेरे पास इतना वैभव है, यह भाव भी परिग्रही में उत्पन्न होता है। धन को अनैतिकरूप से प्राप्त करने के लिए वह अनेक प्रकार का कपट करता है। जैसे-जैसे परिग्रह बढ़ता जाता है, वह उसे और अधिकाधिक चाहता है। धनवान निर्धन का उपहास करता है, यह हास्य है। अपने द्रव्य के प्रति उसे अनुराग होता है, यह रति है। अपने धन का नाश होते देख उसे अरति होती है। कोई मेरे परिग्रह का हरण न कर लें, यह भय उसे सतत सताता है। धन का हरण होने पर परिग्रही जीव शोक करता है। परिग्रह में कमी होने पर वह जुगुप्सा करने लगता है। परिग्रही पुरुष अपने परिग्रह को विकसित करने के लिए सतत प्रयत्न करता है। इसमें वह कलह, परनिन्दा और चुगली करता है, अपमान को सहन करता है, दूसरों पर सन्देह करता है। इस प्रकार परिग्रह सम्पूर्ण दोषों को उत्पन्न करता है।

– आचार्य सुविधिसागर

आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज विरचित

दव्वसंगहो

पहला अधिकार

(अवचूर्णि टीका से युक्त)

उत्थानिका :-

अथेष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य महामुनिसिद्धान्तिकश्रीनेमिचन्द्रप्रतिपादितानां षड्-द्रव्याणां स्वल्पबोधप्रबोधनार्थं संक्षेपार्थतया विवरणं करिष्ये।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा।।१।।

टीका :-

अर्हन्तं जिनवरं **वंदे** नमस्करोमि, कथम्भूतम्? **देविंदविंदवंदं** देवानाम् इन्द्राः देवेन्द्राः, तेषां वृन्दाः समूहाः, तेषां वन्द्यं पूज्यम्। कदा वन्दे? **सव्वदा** सर्वकालं यावत्

उत्थानिकार्थ :-

अब इष्टदेवता-विशेष को नमस्कार कर महामुनि, सिद्धान्तिकश्री नेमिचन्द्र प्रतिपादित षड्-द्रव्यों के स्वरूप का प्रबोध कराने के लिए संक्षेपपद्धति से विवरण करते हैं-

गाथार्थ :-

जेण जिन **जिणवरवसहेण** जिनवर वृषभ ने **जीवमजीवं** जीव और अजीव **दव्वं** द्रव्य **णिद्दिट्ठं** कहे हैं। **देविंदविंदवंदं** देवेन्द्रों के समूह से वन्दनीय **तं** उन जिनेन्द्रदेव को **सव्वदा** हमेशा **सिरसा** सिर नवाँ कर (मैं) **वंदे** नमस्कार करता हूँ।।१।।

टीकार्थ :-

अरिहन्त जिनवर को **वंदे** मैं नमस्कार करता हूँ। वे कैसे हैं? **देविंदविंद-वंदं** देवों के इन्द्र अर्थात् देवेन्द्र, उनका वृन्द अर्थात् समूह, उनसे वन्द्य अर्थात् पूज्य हैं। वन्दना कब करता हूँ? **सव्वदा** सभी काल में, जब तक

सरागपरणतिस्तावद्वन्दे, न वीतरागावस्थायां तदात्मनस्तत्पदप्राप्तेर्न कस्यापि कोऽपि वन्द्यः। अतीतानागतवर्तमानकाले वा। केन वन्दे? **सिरसा** मस्तकेन। **तं** कं वन्दे? **जेण जिणवर-वसहेण णिद्दिट्ठं** येन जिनवरवृषभेण निर्दिष्टं प्रतिपादितम्। जिनवरा गणधरदेवादयस्तेषां मध्ये वृषभः प्रधानः, जिनवरश्चासौ वृषभनाथश्च तेन जिनवरवृषभेण। किं निर्दिष्टम्? **जीवमजीवं दव्वं** जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च।

जीवद्रव्यस्य का व्युत्पत्तिः? व्यवहारनयेन दशभिः प्राणैः सह जीवति वर्तमानकाले, जीविष्यति भविष्यत्काले, जीवितः पूर्वमतीतकाले, निश्चयनयेन चतुर्भिः प्राणैः सत्तासुख-बोधचैतनैर्जीवति स जीवः।

तत्प्राणमाह-

पंच वि इंदियपाणा मणवचिकायेण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दस पाणा।।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = १३०)

सराग परिणति है, तब तक वन्दना करता हूँ। वीतराग अवस्था में मैं नमस्कार नहीं करूँगा, क्योंकि उस पद की प्राप्ति होने पर कोई किसी के द्वारा वन्दनीय नहीं होता। अथवा, अतीत, अनागत और वर्तमान काल में मैं वन्दना करता हूँ। किसके द्वारा वन्दना करता हूँ? **सिरसा** मस्तक से। उनको अर्थात् किनको नमस्कार करता हूँ? **जेण जिणवर-वसहेण णिद्दिट्ठं** जिन जिनवर वृषभ के द्वारा निर्दिष्ट है, प्रतिपादित है। जिनवर अर्थात् गणधरदेवादि, उनमें वृषभ अर्थात् प्रधान, जिनवर हैं वृषभनाथ, उन जिनवर वृषभनाथ के द्वारा। क्या निर्दिष्ट किया गया है? **जीवमजीवं दव्वं** जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य।

जीव द्रव्य की व्युपत्ति क्या है? व्यवहारनय से दश प्राणों के साथ जो वर्तमान काल में जीता है, भविष्यत् काल में जिएगा और अतीत काल में जीवित रहा, वह जीव है। निश्चयनय से जो सत्ता, सुख, बोध और चेतना रूप चार प्राणों के साथ जीवित रहता है, वह जीव है।

उन प्राणों को कहते हैं-

पाँच इन्द्रियप्राण, मन-वचन और काय ये तीन बलप्राण, श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण होते हैं।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = १३०)

इति जीवः।

अजीवद्रव्यस्य किं स्वरूपम्? पुद्गलधर्माधर्माकाशकालरूपम्।

द्रव्यस्य किं लक्षणम्? द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदिति द्रव्यम्। द्रवति पर्यायं गच्छति, द्रोष्यति पर्यायं यास्यति, अदुद्रुवदिति पर्यायं गतवत्पूर्वं, तदपि गुणपर्ययवत्, गुणपर्ययवद् द्रव्यम्। अन्वयेन सह सम्भवा गुणाः। व्यतिरेकिणोऽभिन्ना पर्यायाः। ते च गुणा द्विभेदाः, साधारण-असाधारणश्च। पर्याया उत्पादव्ययरूपाः।

तत्र जीवस्य साधारणाः-अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वं चेतनत्वममूर्तत्वं चेति। असाधारणाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यानि। पर्याया देव-मानुषनारकतिर्यक्त्वेकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रिया इति।

पुद्गलस्य स्वरूपमाह-

अविभागीपरमाणुद्रव्यपुद्गलस्तथा च जलानलादिभिर्नाशं यो न याति स पुद्गलः।

इति वचनात्।

इस प्रकार जीवद्रव्य का वर्णन पूर्ण हुआ।

अजीवद्रव्य का क्या स्वरूप है? वह पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालरूप है।

द्रव्य का लक्षण क्या है? जो **द्रवति**-पर्याय को प्राप्त होता है, **द्रोष्यति**-पर्याय को प्राप्त करेगा, **अदुद्रुवत्**-पूर्व में पर्याय को प्राप्त कर चुका है, वह द्रव्य है। द्रव्य गुणपर्यायात्मक होता है। द्रव्य गुण और पर्यायों से युक्त होता है। **(तत्त्वार्थसूत्र ५/३८)**

जो अन्वय के साथ उत्पन्न होते हैं, वे गुण हैं। व्यतिरेक से जो अभिन्न हैं, वह पर्याय है। वे गुण दो प्रकार के होते हैं-साधारण और असाधारण (विशेष)। पर्याय उत्पाद और व्ययरूप होती है।

उन द्रव्यों में से जीव के अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये साधारण गुण हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि विशेष गुण हैं। देव, मनुष्य, नरक, तिर्यंच, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये जीव की पर्याएँ हैं।

पुद्गल के स्वरूप को कहते हैं-

स च द्विविधः, अणुरूपः स्कन्धरूपश्च। अत्र साधारणगुणाः- अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वमचेतनत्वं मूर्तित्वम् चेति। असाधारणाः स्पर्शरस-रूपगन्धवर्णाः। पर्यायाः गलनपूरणस्वभावः। घटितस्य पुनः स्तम्भादेर्गलनपूरणं नास्ति। कथं नास्ति? सम्प्रति सूत्रतन्तुना स्तम्भस्य मानं गृह्यते, वर्षशतेनापि पुनस्तन्मात्रं भूमौ स्थितानां दृश्यते।

धर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः-अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वममूर्तत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणाः जीवपुद्गलयोर्गतिसहकारित्वम्। पर्याया उत्पादव्ययाः।

अधर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः-अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं प्रदेशत्वममूर्तत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणाः जीवपुद्गलयोः स्थितिसहकारित्वम्। पर्याया उत्पादव्ययाः।

अविभागी परमाणु द्रव्य पुद्गल है। जल, अग्नि आदि के द्वारा जो नाश को प्राप्त नहीं होता, वह पुद्गल है।

ऐसा वचन है।

पुद्गल दो प्रकार का है-अणुरूप और स्कन्धरूप। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये पुद्गलद्रव्य के साधारण गुण हैं। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये असाधारण गुण हैं। पर्याय गलन और पूरण स्वभाव वाली है। बने हुए स्तम्भादि में गलन-पूरण नहीं होता। क्यों नहीं होता? वर्तमान में सूत्रतन्तु के द्वारा (धागे के द्वारा) स्तम्भ का जो प्रमाण लिया जाता है, सैकड़ों वर्षों के बाद भी वह उतनी भूमि में स्थित देखा जाता है।

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये धर्मद्रव्य के साधारण गुण हैं। जीव और पुद्गल की गति में सहकारी बनना धर्मद्रव्य का विशेष गुण है। उत्पाद-व्यय उसकी पर्याएँ हैं।

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये अधर्मद्रव्य के साधारण गुण हैं। जीव और पुद्गल की स्थिति में सहकारी बनना अधर्मद्रव्य का विशेष गुण है। उत्पाद-व्यय उसकी पर्याएँ हैं।

कालद्रव्यस्य साधारणगुणाः-अस्तित्वादयः पूर्वोक्ताः ज्ञातव्याः। असाधारणं द्रव्याणां परिणमयितृत्वम्।

आकाशद्रव्यस्य साधारणगुणाः-अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वममूर्तत्वं प्रदेशत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणाः सकलपदार्थानामवकाशदायकः।

इति प्रतिपादिते सति उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मकं वस्तुप्रतिपादितं कथितम्।

कालद्रव्य के पूर्वकथित अस्तित्वादि साधारण गुण हैं-ऐसा जानना चाहिए। द्रव्यों का परिणमन कराना, कालद्रव्य का असाधारण गुण है।

आकाशद्रव्य के अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व (प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व) अमूर्तत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व ये साधारण गुण हैं। सभी द्रव्यों को अवकाश देना, आकाशद्रव्य का असाधारण गुण है।

ऐसा प्रतिपादन करने पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक वस्तु का प्रतिपादन किया गया, कथन किया गया॥१॥

भावार्थ :-

भगवान आदिनाथ शतेन्द्रों के द्वारा पूजित हैं। उन्होंने जीव-अजीव द्रव्य का व्याख्यान किया है। ऐसे जिनेन्द्र को मैं मस्तक झूका कर नमस्कार करता हूँ।

गाथा में आगत जीव और अजीव इन दो शब्दों का ग्रन्थकार ने समुचित विस्तार किया है। द्रव्य गुण और पर्यायों से युक्त होता है। प्रत्येक द्रव्य में दो प्रकार के गुण पाए जाते हैं-साधारण और विशेष। उनका वर्णन टीकाकार ने किया है। जीव और पुद्गल द्रव्य का व्युत्पत्तिप्रधान अर्थ टीकाकार ने प्रकट किया है॥१॥

विशेष :-

टीकाकार ने पुद्गल के पाँच असाधारण गुण माने हैं। यथा-स्पर्श, रस, रूप, गन्ध और वर्ण। वर्ण और रूप एक ही होने से अनुवाद में मात्र वर्ण शब्द रखा गया है।

आकाशद्रव्य के सामान्य गुणों का नामोल्लेख करते हुए प्रमेयत्व और अगुरुलघुत्व गुणों का उल्लेख नहीं हुआ है। अनुवाद में हमने उनका समुल्लेख किया है॥१॥

उत्थानिका :-

इदानीं जीवस्वरूपमाह-

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥२॥

टीका :-

जीवो अस्ति चेतनालक्षणः स्वपररूपसंवेदकः तथा **उवओगमओ** उपयोगमयः ज्ञानदर्शनलक्षणोपयोगेन युक्तः। अनेन प्रकृतिगुणा ज्ञानादय इत्यपास्तं मोक्षे ज्ञानाद्यभाव इति च।

तथा **अमुत्ति** अमूर्तिः कर्मनोकर्मभिः सदा सम्बन्धेऽपि नैव मूर्तिः स्वकीयस्वभावस्तु अमूर्तस्वरूपापरित्यागात्।

तथा **कत्ता** कर्त्ता, केषाम्? कर्मणां तन्निमित्तात्मपरिणामानां च कर्त्ता। अनेन प्रकृतेरेव कर्मकर्तृत्वं नात्मन इत्येकान्तो निरस्तः।

उत्थानिकार्थ :-

अब जीव का स्वरूप कहते हैं-

गाथार्थ :-

सो वह **जीवो** जीव, **उवओगमओ** उपयोगमय, **अमुत्ति** अमूर्तिक, **कत्ता** कर्त्ता, **सदेहपरिमाणो** स्वदेहपरिमाण, **भोत्ता** भोक्ता, **संसारत्थो** संसारस्थ, **सिद्धो** सिद्ध, **विस्ससा** स्वभाव से **उड्ढगई** ऊर्ध्वगामी है॥२॥

टीकार्थ :-

जीवो जीव चेतनालक्षण वाला तथा स्व-पररूप संवेदक है तथा **उवओगमओ** उपयोगमय, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाले उपयोग से युक्त है। इस पद से ज्ञानादि प्रकृतिगुण नष्ट होते हैं, मोक्ष में ज्ञान का अभाव होता है-इस मत का निराकरण किया गया।

तथा, **अमुत्ति** अमूर्ति, कर्म-नोकर्म के साथ सदैव सम्बन्ध होते हुए भी मूर्तिकता स्वकीय स्वभाव नहीं है, क्योंकि आत्मा के द्वारा अमूर्त-स्वभाव का परित्याग नहीं होता।

तथा, **कत्ता** कर्त्ता है। किनका? कर्मों का और उसके निमित्त से होने वाले आत्मपरिणामों का कर्त्ता है। इस कथन से प्रकृति कर्मों की कर्त्री है, आत्मा नहीं-इस एकान्त को निरस्त किया गया।

तथा **सदेहपरिमाणो** नामकर्मोदयवशादुपात्ताणुमहच्छरीरप्रमाणो न न्यूनो नाप्यधिकः। अनेनात्मनः सर्वगतत्वं वटकणिकामात्रं च प्रत्याख्यातम्।

तथा **भोत्ता** भोक्ता, केषाम्? शुभाशुभकर्मसम्पादितेष्टानिष्टविषयाणां तत्प्रभवसुख-दुःखपरिणामानां च।

तथा **संसारत्थो** त्रसस्थावरपर्यायैर्युक्तः संसारे संसरतीति।

तथा **सिद्धो सो** स प्रागुक्तात्मा सकलकर्मक्षयात् सिद्धो भवति।

पुनः किं विशिष्टः? **विस्ससोड्ढगई** सिद्धः सन् विश्वस्य त्रैलोक्यस्योर्ध्वं गच्छति अथवा विश्वस्य स्वभावेन ऊर्ध्वं गच्छति। किंवत्? एरण्डबीजवत्, अग्निशिखावच्च, जलमध्ये आलाबुवदिति। अनेन यत्रैव मुक्तस्तत्रैव स्थित इति निरस्तः।

अत्रौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणि नोकर्मः। (नोकर्माणि)

उत्थानिका :-

तथा **सदेहपरिणामो** नामकर्मोदय के उदय से उत्पन्न अणु और महत् शरीरप्रमाण है। शरीर से न न्यून है और न अधिक। इससे आत्मा का सर्वगतत्व और वटकणिकामात्रत्व का निषेध किया गया।

तथा **भोत्ता** भोक्ता, किन्हीं शुभाशुभकर्मों से सम्पादित इष्ट-अनिष्ट विषयों का और उससे उत्पन्न सुख-दुःख परिणामों का भोक्ता है।

तथा **संसारत्थो** त्रस और स्थावरपर्याय से युक्त आत्मा संसार में संसरण करता है।

तथा **सिद्धो सो** वह पूर्वकथित आत्मा सकल कर्मों का क्षय करके सिद्ध होता है।

पुनः जीव में कौनसी विशेषता है? **विस्ससोड्ढगई** सिद्ध होकर विश्व के, त्रैलोक्य के ऊर्ध्व जाता है अथवा स्वभाव से ऊर्ध्व जाता है। किस प्रकार? एरण्ड बीज के समान, अग्नि की शिखा के समान अथवा जल में तुम्बी के समान। इससे जहाँ से मुक्त होते हैं, वहीं स्थित रहते हैं-यह मत निरस्त हो गया।

इस प्रकरण में औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँचों शरीर नोकर्म हैं॥२॥

भावार्थ :-

सो जीवो व्यवहाररूपतया परमार्थरूपतया च द्विविध उच्यते, इत्याह -

तिक्काले चदु पाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेयणा जस्स॥३॥

टीका :-

ववहारा सो जीवो व्यवहारनयात् सो जीवो भण्यते। स कः? **जस्स** यस्य विद्यन्ते, के ते? **चदु पाणा** चत्वारः प्राणाः, किं नामानाः? **इंदियबलमाउआणपाणो य** इन्द्रियप्राणाः बलप्राणाः आयुप्राणः आणापाणप्राणश्च एवं चत्वारो भेदेन।

पुनर्दश कथम्? पंच इंदियपाणादिगाथा प्रथमसूत्रव्याख्यानेन प्रथमोक्तम्।

इन्द्रियं पञ्चेन्द्रियसंज्ञिजीवापेक्षया प्रतिपादितं, न पुनः सर्वजीवापेक्षया।

आत्मा के नौ अधिकार हैं। यथा-**(१)** जीव, **(२)** उपयोगमय, **(३)** अमूर्तिक, **(४)** कर्त्ता, **(५)** स्वदेहपरिमाण, **(६)** भोक्ता, **(७)** संसारस्थ, **(८)** सिद्ध और **(९)** ऊर्ध्वगमन॥२॥

उत्थानिकार्थ :-

वह जीव व्यवहार और परमार्थरूप से दो प्रकार का होता है-ऐसा कहते हैं।

गाथार्थ :-

जस्स जिसके **तिक्काले** तीन काल में **इंदियबलमाउ** इन्द्रिय, बल, आयु **य** और **आणपाणो** श्वासोच्छ्वास ये **चदु** चार **पाणा** प्राण हैं, **सो** वह **ववहारा** व्यवहारनय से **जीवो** जीव है **दु** और **जस्स** जिसके **चेयणा** चेतना है **णिच्छयणयदो** निश्चयनय से **सो** वह **जीवो** जीव है॥३॥

टीकार्थ :-

ववहारा सो जीवो व्यवहार नय से वह जीव कहलाता है। वह कौन? **जस्स** जिसके होते हैं। क्या होते हैं? **चदुपाणा** चार प्राण। उनका नाम क्या है? **इंदियबलमाउआणपाणो य** इन्द्रियप्राण, बलप्राण, आयुप्राण और श्वासोच्छ्वासप्राण, ये चार प्राण होते हैं।

फिर दश प्राण किस प्रकार हैं?

पाँच इन्द्रिय प्राण इत्यादि गाथा प्रथम गाथासूत्र के व्याख्यान में कही गई है।

कस्मिन् काले ते चत्वारः प्राणाः भवन्ति? **तिक्काले** अतीतानागतवर्तमानकाल-त्रयेऽपि, एकेन्द्रियापेक्षया विकल्पः।

णिच्छयणयदो दु निश्चयनयात्पुनः **चेयणा जस्स** चैतन्यमेवोदयं यस्य।

उत्थानिका :-

तस्य जीवस्य उपयोगद्वयमाह-

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमह केवलं णेयं।।४।।

टीका :-

इन्द्रियों का वर्णन संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपेक्षा से किया गया है, सम्पूर्ण जीवों की अपेक्षा से नहीं।

कौनसे काल में वे चार प्राण होते हैं? **तिक्काले** अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों ही कालों में चार प्राण होते हैं। यह कथन एकेन्द्रियों की अपेक्षा से किया गया है।

णिच्छयणयदो दु पुनः निश्चयनय से **चेयणा जस्स** जिसमें चेतना पाई जाती है, उसे जीव कहते हैं।।३।।

भावार्थ :-

जो त्रिकाल में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणों से युक्त होता है, उसे जीव कहते हैं। यह लक्षण व्यवहारनय की अपेक्षा से किया गया है। जो चेतना से सम्पन्न है, वह जीव है। यह लक्षण निश्चयनय की अपेक्षा से किया गया है।।३।।

पाठभेद :-

विवहारा = ववहारा चेयणा = चेदणा।।३।।

उत्थानिकार्थ :-

उस जीव के दो उपयोगों को कहते हैं-

गाथार्थ :-

उवओगो उपयोग **दुवियप्पो** दो प्रकार का है-**दंसण** दर्शन **च** और **णाणं** ज्ञान। **दंसणं** दर्शनोपयोग **चदुधा** चार प्रकार का है-**चक्खु** चक्षुदर्शन,

अचक्खु अचक्षुदर्शन, **ओही** अवधि **दंसण** दर्शन **अह** और **केवल** केवल-दर्शन-ऐसा **णेयं** जानना चाहिए।।४।।

टीकार्थ :-

उवओगो दुवियप्पो उपयोग दो प्रकार का है। किस प्रकार? उसे कहते हैं। **दंसणणाणं च** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग। उसमें दर्शनोपयोग **चदुधा** चार प्रकार का है। वे चार प्रकार कौनसे हैं? उन्हें बताते हैं- **चक्खु अखक्खु ओही** चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन **अह** और **केवलं** केवलदर्शन **णेयं** जानना चाहिए।

इसमें चक्षुदर्शन एक प्रकार का है। अचक्षुदर्शन स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण के भेद से चार प्रकार का है।।४।।

भावार्थ :-

चैतन्यानुविधायी आत्मपरिणामों को उपयोग कहते हैं। दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग के भेद से उपयोग दो प्रकार का है।

साकार उपयोग को ज्ञान और अनाकार उपयोग को दर्शन कहते हैं। उन दोनों उपयोगों में से दर्शनोपयोग चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षु-दर्शनोपयोग अवधिदर्शनोपयोग तथा केवलदर्शनोपयोग, इस प्रकार चार भेदों से युक्त है।।४।।

पाठभेद :-

अचक्खु = अचक्खू दंसणमह = दंसणमध।।४।।

उत्थानिकार्थ :-

ज्ञान आठ प्रकार का होता है, ऐसा कहते हैं -

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च।।५।।

टीका :-

णाणं अट्ठवियप्पं ज्ञानमष्टविकल्पं भवति। कथम्? **मदिसुदिओही अणाण-णाणाणि मणपज्जयकेवलमवि** मतिश्रुतावधिज्ञानानि, कथम्भूतानि? **अणाणणाणाणि** अज्ञानसञ्ज्ञानानि, मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवध्यज्ञानं विभङ्गज्ञान-विज्ञानानि, मनःपर्ययं केवलमथानन्तरम्।

तत्र विशिष्टमत्यावरणकर्मक्षयोपशमादिन्द्रियैर्मनसा च यज्जानाति तन्मतिज्ञानं षट्त्रिंशतत्रयशतभेदाः।३३६।

(श्रुतज्ञानस्य) किं विशिष्टम्? श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुतं यज्जानाति तच्छ्रुतज्ञानम्। तन्मतिपूर्वकं कथम्? यथाङ्कुरो बीजपूर्वकः। (तथा श्रुतं

गाथार्थ :-

णाणं ज्ञान **अट्ठवियप्पं** आठ प्रकार का है- **मदि** मति, **सुदि** श्रुत, **ओही** अवधि, **अणाणणाणाणि** अज्ञान और ज्ञानरूप हैं। **मणपज्जय** मनःपर्यय **अह** और **केवल** केवलज्ञान। वे **पच्चक्ख** प्रत्यक्ष **च** और **परोक्ख** परोक्ष **भेयं** भेद से युक्त हैं।।५।।

टीकार्थ :-

णाणं अट्ठवियप्पं ज्ञान के आठ भेद हैं। किस प्रकार? **मदिसुदिओही अणाणणाणाणि मणपज्जय केवलमह** मति, श्रुत और अवधिज्ञान। ये तीनों कैसे हैं? **अणाणणाणाणि** अज्ञानसंज्ञक तथा मतिश्रुतावधिज्ञान। मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अवधि अज्ञान अर्थात् विभंगज्ञान तथा सम्यग्ज्ञान। मनःपर्यय और केवल।

उनमें विशिष्ट मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण जो ज्ञान इन्द्रिय और मन के द्वारा जानता है, वह मतिज्ञान है। मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद हैं।

श्रुतज्ञान की क्या विशेषता है?

श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर कथन किए जाने वाले श्रुत को जो ज्ञान जानता है, वह श्रुतज्ञान है।

मतिपूर्वकः) तच्च द्विभेदमनेकभेदं च। द्वौ भेदौ तावदुच्येते-अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टं च, अङ्गबाह्यमनेकविधं दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि। अथ चतुर्दशप्रकीर्णकाः सामायिको-त्तरादिपुण्डरीकान्ताः। अङ्गप्रविष्टं द्वादशाङ्गान्याचारादि। अनेकभेदाः पर्यायादि।

विशिष्टावधिज्ञानावरणक्षयोपशमान्मनसोऽवष्टम्भेन यत्सूक्ष्मान् पुद्गलान् परिच्छिनत्ति स्वपरयोश्च पूर्वजन्मान्तराणि जानाति, भविष्यजन्मान्तराणि तदवधिज्ञानम्। तद्देशावधि-परमावधिसर्वावधिभेदात् त्रिविधम्।

विशिष्टं क्षयोपशमान्मनसोऽवष्टम्भेन परमनसिस्थितमर्थं यज्जानाति तन्मनःपर्यय-ज्ञानम्। तदृजुविपुलमतीविकल्पाद्विभेदम्।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीयान्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टयनिर्मूलोन्मूलनात् वेदनीयायुगोत्रनामकर्मणां दग्धरज्जुवत् स्थिते यदुत्पन्नं त्रैलोक्योदरवर्तिसमस्तवस्तुयुगपत्-सकलपदार्थप्रकाशकमसहायं तत्केवलज्ञानम्।

श्रुतज्ञान को मतिज्ञानपूर्वक क्यों कहा गया है? जिस प्रकार अंकुर बीजपूर्वक होता है। (उसी प्रकार श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है।)

श्रुतज्ञान के दो भेद हैं और अनेक भी। उनमें से दो भेदों को कहते हैं- अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। अंगबाह्य दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि अनेक प्रकार का है। सामायिक से पुण्डरीक तक चौदह प्रकीर्णक हैं। आचारादि बारह अंगरूप अंगप्रविष्ट है।

इनके पर्यायादि की अपेक्षा से अनेक भेद हैं।

विशिष्ट अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मन के सानिध्य में जो ज्ञान सूक्ष्म पुद्गलों को जानता है, स्व और पर के पूर्व जन्मान्तरों को तथा भविष्यत् जन्मान्तरों को जानता है, वह अवधिज्ञान है। अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि और सर्वावधि के भेद से तीन प्रकार का है।

विशिष्ट क्षयोपक्षम के कारण मन के साथ परकीय मन में स्थित अर्थ को जो ज्ञान जानता है, वह मनःपर्ययज्ञान है। मनःपर्ययज्ञान के दो भेद हैं-ऋजुमति और विपुलमति।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिकर्मों का निर्मूलरूप से उन्मूलन होने पर तथा वेदनीय, आयु, गोत्र और नामकर्म के जली हुई रस्सी के समान होने पर जो ज्ञान उत्पन्न

अत्र मतिश्रुते परोक्षे, अवधिमनःपर्यये देशप्रत्यक्षे, केवलं सकलप्रत्यक्षमिति।

उत्थानिका :-

तस्य जीवस्य सामान्येन व्यवहारलक्षणं विशेषेण निश्चयलक्षणं चाह –

अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं।।६।।

टीका :-

होता है, जो त्रैलोक्य के उदर में स्थित समस्त वस्तुओं को युगपत् जानता है, जो सम्पूर्ण पदार्थों का प्रकाशक है तथा असहाय है, वह केवलज्ञान है।

इन ज्ञानों में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं। अवधिज्ञान और मनः–पर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं तथा केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है।।५।।

भावार्थ :-

मति–अज्ञान, श्रुत–अज्ञान, अवधि–अज्ञान (विभंगावधि), मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये ज्ञानपयोग के आठ भेद हैं।

प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से ज्ञानोपयोग के दो भेद भी हैं।।५।।

पाठभेद :-

केवलमह = केवलमवि।।५।।

उत्थानिकार्थ :-

उस जीव के सामान्य से व्यवहारलक्षण और विशेष से निश्चयलक्षण को कहते हैं –

गाथार्थ :-

ववहारा व्यवहार से **अट्ठचदुणाणदंसण** आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन को **सामण्णं** सामान्य से **जीवलक्खणं** जीव का लक्षण **भणियं** कहा है। **पुण** पुनः **सुद्धणया** शुद्धनय से **सुद्धं** शुद्ध **दंसणं** दर्शन और **णाणं** ज्ञान को जीव का लक्षण कहा गया है।।६।।

टीकार्थ :-

जीवलक्खणं भणियं जीवों का लक्षण अर्थात् स्वभाव कहा गया है। किस

जीवलक्खणं भणियं जीवानां लक्षणं स्वभावो भणितम्। कथम्भूतम्? **सामण्णं** सामान्यम्। अयमर्थः– केषाञ्चित् शक्तिरूपेण केषाञ्चिद् व्यक्तिरूपेण विद्यमानत्वात्। कदा सामान्यम्? **ववहारणया** व्यवहारनयापेक्षया। किं लक्षणम्? **अट्ठ चदु णाणदंसण** अष्टप्रकारं ज्ञानं चतुःप्रकारं दर्शनम्। एते व्याख्येते प्रागेव।

सुद्धं पुण दंसणं णाणं शुद्धनयापेक्षया शुद्धं पुनर्दर्शनं ज्ञानं च, दृष्टत्वं ज्ञातृत्वं च।

उत्थानिका :-

स च जीवो मूर्तिर्भवत्यमूर्तिश्चेत्याह –

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो।।७।।

प्रकार? **सामण्णं** सामान्य। इसका यह अर्थ है यह है–किन्हीं जीवों में शक्तिरूप से और किन्हीं जीवों में व्यक्तिरूप विद्यमान होता है।

सामान्य कब होता है? **ववहारणया** व्यवहारनय की अपेक्षा से। कौनसा लक्षण है?

अट्ठचदुणाणदंसण आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन। इनका व्याख्यान पूर्व में ही किया जा चुका है।

सुद्धं पुण दंसणं णाणं शुद्धनय की अपेक्षा से पुनः शुद्ध दर्शन और ज्ञान अर्थात् दृष्टत्व और ज्ञातृत्व जीव का लक्षण है।।६।।

भावार्थ :-

आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन को व्यवहारनय से जीव का लक्षण माना गया है।

शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन को निश्चयनय से जीव का लक्षण कहा गया है।।६।।

विशेष :-

टीकाकार ने टीका में **ववहारा** की जगह **ववहारणया** पाठ का प्रयोग किया है। परन्तु, छन्द की दृष्टि से **ववहारा** पाठ ही उचित है।।६।।

उत्थानिकार्थ :-

वह जीव मूर्तिक और अमूर्तिक है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ :-

स व्यवहारकर्त्ता परमार्थकर्त्ता च भवतीत्याह –

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।।८।।

टीका :-

स **आदा** आत्मा, **कत्ता** कर्त्ता भवति। कदा? **ववहारदो** व्यवहारनयापेक्षया, केषां कर्त्ता? **पुग्गलकम्मादीणं** पुद्गलकर्मादीनाम्।

णिच्छयदो निश्चयनयापेक्षया, **दु** पुनः, **चेदणकम्माण** चेतनकर्मणां क्रोधादीनां कर्त्ता। **सुद्धणया** शुद्धनयापेक्षया **सुद्धभावाणं** शुद्धभावानाम्, अनन्तदर्शनज्ञानवीर्य-सुखानामुत्तरोत्तरप्रकृष्टपरिणामानां कर्त्ता।

वह जीव व्यवहारकर्त्ता और परमार्थकर्त्ता होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ :-

आदा आत्मा **ववहारदो** व्यवहार से **पुग्गलकम्मादीणं** पुद्गल कर्मों का **णिच्छयदो** निश्चय से **चेदणकम्माण** चैतन्यकर्मों का **दु** और **सुद्धणया** शुद्ध -नय से **सुद्धभावाणं** शुद्ध भावों का **कत्ता** कर्त्ता है।।८।।

टीकार्थ :-

वह **आदा** आत्मा **कत्ता** कर्त्ता होता है। कब? **ववहारदो** व्यवहारनय की अपेक्षा से। किनका कर्त्ता होता है? **पुग्गलकम्मादीणं** पुद्गल कर्मादिकों का कर्त्ता होता है।

णिच्छयदो निश्चयनय की अपेक्षा से **दु** पुनः **चेदणकम्माण** चेतन कर्मों का अर्थात् क्रोधादिकों का कर्त्ता है।

सुद्धणया शुद्धनय की अपेक्षा से **सुद्धभावाणं** शुद्ध भावों का अर्थात् अनन्त दर्शन, ज्ञान, वीर्य और सुख, इन गुणों के उत्तरोत्तर प्रकृष्ट परिणामों का कर्त्ता है।।८।।

भावार्थ :-

व्यवहारनय से आत्मा पुद्गलकर्मों का (द्रव्यकर्मों का) कर्त्ता है। अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा से आत्मा क्रोधादि चेतनकर्मों का (भाव कर्मों का) कर्त्ता है और शुद्ध निश्चयनय से आत्मा अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है।।८।।

टीका :-

सो जीवो **अमुत्ति तदो** अमूर्तिः ततः, कारणाद्यस्मान्नो सन्ति नैव विद्यन्ते।

के ते? **वण्णरसपंच गंधा दो फासा अट्ठ** वर्णाः पञ्च रक्तपीतनीलकृष्णश्वेताः। रसाः पञ्च कटुतिक्तकषायमधुरलवणाम्लाः। गन्धौ द्वौ सुरभिदुरभिश्च। स्पर्शाः अष्ट मृदुकर्कशगुरुलघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णाः एते न सन्ति, कदा न सन्ति? **णिच्छया** निश्चयनयापेक्षया।

ववहारा व्यवहारनयापेक्षया पुनः **मुत्ति** मूर्तियुक्तः उक्तः। **बंधादो** कर्मनोकर्मबन्धवशात्।

उत्थानिका :-

णिच्छया निश्चयनय से **जीवे** जीव में **पंच वण्ण** पाँच वर्ण, **पंच रस** पाँच रस, **दो गंधा** दो गन्ध, **अट्ठ फासा** अष्ट स्पर्श **णो** नहीं **संति** होते। **तदो** इसीलिए **सो** वह **अमुत्ति** अमूर्तिक है। **ववहारा** व्यवहारनय से **बंधादो** बन्ध के कारण **मुत्ति** मूर्तिक है।।७।।

टीकार्थ :-

वह जीव **अमुत्ति तदो** उस कारण से अमूर्तिक है। जीव के अमूर्त्तिक होने में कोई कारण नहीं है।

वे कौन हैं? **वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ** वर्ण पाँच हैं–लाल, पीला, नीला, काला और सफेद। रस पाँच हैं–कटुक, तीता, कसायला, मधुर और लवणाम्ल। गन्ध दो हैं–सुगन्ध और दुर्गन्ध। स्पर्श आठ हैं–मृदु, कर्कश, भारी, हलका, चिकना, रूखा, शीत और उष्ण। ये नहीं होते। कब नहीं होते? **णिच्छया** निश्चयनय की अपेक्षा से।

ववहारा पुनः व्यवहारनय की अपेक्षा से **मुत्ति** मूर्तिक है–ऐसा कहा गया है। **बंधादो** कर्म और नोकर्म के बन्ध से आत्मा मूर्तिक है।।७।।

भावार्थ :-

जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं होते। अतः निश्चयनय की अपेक्षा से जीव अमूर्तिक है। जीव पुद्गल कर्मों से बन्धता है। वे कर्म मूर्तिक हैं। अतः व्यवहारनय का कथन है कि जीव बन्ध के कारण मूर्तिक है।।७।।

उत्थानिकार्थ :-

उत्थानिका :-

स च व्यवहारभोक्ता भवतीत्याह -

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।।९।।

टीका :-

स **आदा पभुंजेदि** स आत्मा प्रभुङ्क्ते। किं तत्? **पुग्गलकम्मप्फलं** पुद्गलसम्बन्धात्कर्मणः फलम्।

स चेतनानां कर्मणामित्यर्थः। किं फलम्? **सुहदुक्खं** सुखं दुःखं च भुङ्क्ते । कदा भुङ्क्ते? **ववहारा** व्यवहारनयापेक्षया।

णिच्छय्दो निश्चयनयापेक्षया पुनः **चेदणभावं खु आदस्स** आत्मनः परमानन्द-स्वरूपतामुपभुङ्क्ते स्फुटम्।

उत्थानिकार्थ :-

वह आत्मा व्यवहार से भोक्ता होता है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

आदा आत्मा **ववहारा** व्यवहार से **सुहदुक्खं** सुख-दुःखरूप **पुग्गल-कम्मप्फलं** पुद्गल कर्मफलों को, **णिच्छयणयदो** निश्चयनय से **आदस्य** आत्मा के **चेदणभावं** चैतन्यभाव को **खु** निश्चयतः **पभुंजेदि** भोगता है।।९।।

टीकार्थ :-

आदा पभुंजेदि वह आत्मा भोक्ता है। आत्मा किनका भोक्ता है? **पुग्गलकम्मप्फलं** पुद्गल के सम्बन्ध से कर्मों के फल का भोक्ता है।

वह आत्मा चैतन्य कर्मों का भोक्ता है-यह अर्थ है। क्या फल है? **सुहदुक्खं** सुख और दुःख का भोक्ता है। जीव भोक्ता कब होता है? **ववहारा** व्यवहारनय की अपेक्षा भोक्ता होता है।

णिच्छयदो पुनः निश्चयनय की अपेक्षा से **चेदणभावं खु आदस्स** आत्मा निश्चय से आत्मा के परमानन्दस्वरूप का उपभोक्ता है।।९।।

भावार्थ :-

आत्मा व्यवहानय से पुद्गलकर्मों के सुख-दुःखरूप फल का उपभोग करता है और निश्चयनय से अपने चैतन्यमयी भावों का भोक्ता है।।९।।

उत्थानिका :-

स आत्मा व्यवहारपरमार्थापेक्षयेत्थं प्रमाण इति वदन्नाह-

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।।१०।।

टीका :-

चेदा अणुगुरुदेहपमाणो स आत्मा व्यवहारनयमाश्रित्य सूक्ष्मस्थूलदेहप्रमाणो यदा कर्मवशात् कुन्थुपर्यायं गृह्णाति तदा तद्देहप्रमाणः यदा हस्तिप्रमाणं पर्यायं गृह्णाति तदा तद्देहप्रमाणः। कुतः? **उवसंहारप्पसप्पदो** यत उपसंहारप्रसर्पणतः, उपसंहार-विस्तारधर्मो ह्यात्मा। कोऽत्र दृष्टान्तः? यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति, लघुभाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति इति।

किन्तु **असमुहदो** समुद्घातसप्तकं वर्जयित्वा, तत्राणुगुरुत्वाभावः।

उत्थानिकार्थ :-

वह आत्मा व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा से इस आकार को धारण करने वाला है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

चेदा आत्मा **ववहारा** व्यवहार से **असमुहदो** असमुद्घात अवस्था में **उवसंहारप्पसप्पदो** उपसंहार व प्रसर्पण के कारण **अणुगुरुदेहपमाणो** छोटे बड़े प्रमाण का धारक है **वा** और **णिच्छयणयदो** निश्चयनय से **असंखदेसो** असंख्यातप्रदेशी है।।१०।।

टीकार्थ :-

चेदा अणुगुरुदेहपमाणो वह आत्मा व्यवहारनय के आश्रय से सूक्ष्म-स्थूल देह के प्रमाण है। जब कर्मवशात् कुन्थुपर्याय को ग्रहण करता है, तब उस देह के प्रमाण है। जब हाथी की पर्याय को ग्रहण करता है, तब उस देह के प्रमाण है। क्यों? **उवसंहारप्पसप्पदो** उपसंहार और प्रसर्पण से, क्योंकि आत्मा उपसंहार और विस्तार धर्म वाला है।

इसमें कौनसा दृष्टान्त है? जैसे दीपक बड़े बर्तन से आच्छादित होने पर उस बर्तन को प्रकाशित करता है, छोटे बर्तन से प्रच्छादित होने पर उसी बर्तन को प्रकाशित करता है।

समुद्घातभेदानाह –

वेयणकसायविउव्वण तह मारणंतिओ समुग्घाओ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु।।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = ६६७)

समुद्घातलक्षणमाह –

मूलशरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घादयं णाम।।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = ६६८)

तत्प्रत्येकं यथा–

तीव्रवेदनानुभवन्मूलशरीरमत्यक्त्वात्मप्रदेशानां बहिर्न्निगमनमिति वेदनासमुद्घातः।

तीव्रकषायोदयान्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्मप्रदेशानां बहिर्न्निर्गमनमिति कषायसमुद्घातः।

मूलशरीरमत्यज्य किमपि विकुर्वयितुमात्मप्रदेशानां बहिर्न्निर्गमनमिति विकुर्वणा–समुद्घातः।

परन्तु, **असमुहदो** सात समुद्घात को छोड़ कर, क्योंकि समुद्घात में लघु–गुरुत्व का अभाव होता है।

समुद्घात के भेदों को कहते हैं –

वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणन्तिक, तैजस, छठवाँ आहारक और सातवाँ केवलियों का समुद्घात है।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = ६६७)

समुद्घात के लक्षण को कहते हैं –

मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का उत्तर शरीर की ओर गमन होने को समुद्घात कहते हैं।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड = ६६८)

उनका स्वरूप निम्न प्रकार है–

तीव्र वेदना के अनुभव से मूल शरीर को छोड़े बिना आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना वेदना समुद्घात है।

तीव्र कषाय के उदय से मूल शरीर को छोड़े बिना परघात के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्घात है।

मारणान्तिकसमये मूलशरीरमत्यज्य यत्र कुत्रचिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्पृष्टुमात्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति मारणान्तिकसमुद्घातः।

स्वस्य मनोऽनिष्टजनकं किञ्चित्कारणान्तरमवलोक्य समुत्पन्नक्रोधस्य संयमनिधानस्य महामुनिर्मूलशरीरमत्यज्य सिन्दूरपुञ्जप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाणः सूच्यंगुल–संख्येयभागो मूलविस्तारः नवयोजनाग्रविस्तारः काहलाकृतिपुरुषो वामस्कन्धान्निर्गत्य वामप्रदक्षिणेन हृदयनिहितं विरुद्धं वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव संयमिना सह स च भस्मतां व्रजति, द्वीपायनवत्। असावशुभरूपस्तेजः समुद्घातः।

लोकं व्याधिर्दुभिक्षादिपीडितमवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसंयमनिधानस्य महर्षे–र्मूलशरीरमत्यज्य शुभ्राकृतिः प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणस्कन्धान्निर्गत्य दक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फेटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशत्यसौ शुभरूपस्तेजः समुद्घातः।

मूल शरीर को छोड़े बिना विक्रिया करने में उद्यत आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना विक्रिया समुद्घात है।

मरण के समय में मूल शरीर को छोड़े बिना जहाँ कहीं की बद्धायु है, उस स्थान को स्पर्श करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्घात है।

अपने मन में अनिष्ट उत्पन्न करने वाले किंचित् कारण को देख कर उत्पन्न हुआ है क्रोध जिनको, ऐसे संयमनिधान महामुनि के मूल शरीर को छोड़े बिना सिन्दूर के पूंज की प्रभा वाला, बारह योजन प्रमाण दीर्घ, सूच्यंगुल के संख्येय भाग मूल विस्तार एवं नव योजन अग्र में विस्तार वाला, काहल की आकृति (बिलाव के आकार का) का धारक, बायें कन्धे से निकल कर बायीं प्रदक्षिणा करके हृदय के विरुद्ध वस्तु को भस्म कर उसी संयमी के साथ स्वयं भी द्वीपायन के समान भस्म हो जाता है। यह अशुभ तैजस समुद्घात है।

लोक को व्याधि–दुर्भिक्षादि से पीड़ित देख कर उत्पन्न हुई है कृपा जिनमें, ऐसे परम संयमनिधान महर्षि के मूल शरीर को छोड़े बिना सफेद आकृति वाला, पूर्वकथित देहप्रमाण का धारक पुरुष दक्षिण कन्धे से निकल कर दक्षिण से ही व्याधि–दुर्भिक्षादि का विनाश करके पुनः अपने स्थान में प्रवेश करता है। यह शुभरूप तैजस समुद्घात है।

समुत्पन्नपदपदार्थभ्रान्ते परमर्द्धिसम्पन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमत्यज्य शुद्धस्फटिकाकृतिरेक -हस्तप्रमाणः पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्त्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति तद्दर्शनाच्च स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पादयिष्यतः असावाहारसमुद्घातः।

सप्तमः केवलिनां दण्डकपाटप्रतरपूरणस्वभावः सोऽयं केवलिसमुद्घातः।

स एव **णिच्छयणयदो** निश्चयनयापेक्षया, **असंखदेसो वा** असंख्याता लोकमात्रा। वा शब्दोऽत्र स्फुटवाची।

इत्युक्तस्वदेहप्रमाणं प्रतिपादितः।

पद या पदार्थ में भ्रान्ति उत्पन्न होने पर परम ऋद्धिसम्पन्न महर्षि के मूल शरीर को छोड़े बिना शुद्ध स्फटिक के आकार वाला एक हाथ प्रमाण पुरुष मस्तक से निकल कर जहाँ कहीं भी अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञानी को देखता है, उनके दर्शन से स्वाश्रित मुनि के पद और पदार्थ के निश्चय को उत्पन्न करता है, वह आहारक समुद्घात है।

केवलियों के दण्ड, कपाट, प्रतर और पूरण स्वभाव वाला सातवाँ केवली समुद्घात है।

वही आत्मा **णिच्छयणयदो** निश्चयनय की अपेक्षा से **असंखदेसो वा** असंख्यात प्रदेशी है।

इस पद में प्रयुक्त **वा** शब्द निश्चयवाची है।

इस प्रकार स्वदेहप्रमाण का प्रतिपादन किया गया**।।१०।।**

भावार्थ :-

समुद्घात के अतिरिक्त समय में व्यवहारनय से जीव स्वदेहप्रमाण है, क्योंकि जीव में संकोच और विस्तार की शक्ति है। उस शक्ति के बल से जीव का आकार देहप्रमाण होता है।

किसी कारण को प्राप्त कर मूल शरीर को छोड़े बिना आत्मप्रदेशों के शरीर से बाहर निर्गमन होने को समुद्घात कहते हैं। वेदना, कषाय, तैजस, आहारक, मारणान्तिक, वैक्रियिक और कार्मण के भेद से समुद्घात सात प्रकार का है।

निश्चयनय से आत्मा सच्चिदानन्दमयी, लोकाकाशप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है**।।१०।।**

उत्थानिका :-

जीवलक्षणं अनन्तानन्तजीवास्ते च संसारावस्थाः भवन्तीत्याह -

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी।।११।।
समणा अमणा णेया पंचिदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बायरसुहुमेइंदिय सव्वे पज्जत्त इदरा य।।१२।।

टीका :-

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी पृथिवीकायिकाः, अपकायिकास्तेजकायिकाः वातकायिकाः वनस्पतिकायिकाश्च। **विविहथावरेइंदी** एते विविधाः स्थावराः एकेन्द्रियाः।

एतेषां किं स्वरूपम्?

उत्थानिकार्थ :-

जीवों के लक्षणानुसार अनन्तानन्त जीव संसारी अवस्था में हैं, ऐसा कहते है-

गाथार्थ :-

पुढवि पृथिवी, **जल** जल, **तेउ** अग्नि, **वाऊ** वायु, **वणप्फदी** वनस्पति-कायिक **विविह** अनेक **थावर** स्थावर **एइंदी** एकेन्द्रिय हैं। **विगतिगचदुपंचक्खा** द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय **संखादी** शंख आदि **तस-जीवा** त्रसजीव **होंति** होते हैं**।।११।।**

पंचिदिय पंचेन्द्रिय **समणा** सैनी **अमणा** असैनी हैं-ऐसा **णेया** जानना चाहिए। **परे** शेष **सव्वे** सभी जीव **णिम्मणा** असैनी हैं। **एइंदिय** एकेन्द्रिय **बायर** बादर और **सुहुम** सूक्ष्म हैं। **सव्वे** सभी **पज्जत्त** पर्याप्तक **य** और **इदरा** अपर्याप्तक होते हैं**।।१२।।**

टीकार्थ :-

पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक **विविहथावरेइंदी** ये विविध स्थावर एकेन्द्रिय हैं।

इनका क्या स्वरूप है?

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया।।

(पंचास्तिकाय = ११३)

एतेषामनुक्ता अपि समारोप्य प्राणाः कथ्यन्ते।

तदेकेन्द्रियस्य कति प्राणाः? स्पर्शनेन्द्रियप्राणः कायबलप्राण उश्वासनिश्वासप्राण आयुप्राणश्चेति चत्वारः।

ते चैकेन्द्रियाः बादराः सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च।

एतेषां लक्षणं कथ्यते।

वाग्गोचराः स्थूलाश्चिरस्थायिनो बादराः। अवाग्गोचराः सूक्ष्माः, प्रतिक्षणविनाशिनः सूक्ष्माः। सप्रतिघाता बादराः परैर्मूर्तद्रव्यैर्बाध्यमाना इत्यर्थः। अप्रतिघाताः सूक्ष्माः परैर्मूर्तद्रव्यैरबाध्यमानाः।

पर्याप्तापर्याप्तयोः स्वरूपमाह-

जिस प्रकार अण्डे में वृद्धि पाने वाले प्राणी, गर्भ में वृद्धि पाने वाले प्राणी और मूर्च्छा को प्राप्त हुए मनुष्य बुद्धिपूर्वक व्यापार से रहित होते हुए भी जीव हैं, उसी प्रकार एकेन्द्रिय भी जीव हैं।

यहाँ अनुक्त होते हुए भी प्राणों का कथन किया जाता है।

एकेन्द्रिय जीवों के कितने प्राण हैं? स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबल प्राण, उच्छ्वास-निश्वासप्राण और आयुप्राण ये चार प्राण होते हैं।

वे एकेन्द्रिय बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं।

इनका लक्षण कहते हैं।

वचनगोचर, स्थूल और चिरकाल तक स्थिर रहने वाले जीव बादर होते हैं।

वचन के अगोचर, सूक्ष्म और प्रतिक्षण नष्ट होने वाले जीव सूक्ष्म होते हैं।

बादर जीव सप्रतिघात होते हैं अर्थात् अन्य मूर्त द्रव्यों के द्वारा जो बाधित होते हैं, वे जीव बादर हैं। सूक्ष्म जीव प्रतिघात से रहित होते हैं अर्थात् अन्य मूर्तिक द्रव्यों के द्वारा बाधा को प्राप्त नहीं होते।

पर्याप्तक और अपर्याप्तक के स्वरूप को कहते हैं।

आहारशरीरेन्द्रियाणप्राणभाषामनसां परिपूर्णत्वे सति गर्भान्निर्गमणं पर्याप्तस्य लक्षणम्। एतेषामपरिपूर्णत्वे सति गर्भाच्च्यवनमपर्याप्तस्य-लक्षणम्। गर्भ इत्युपलक्षणमेतत्। नत्वेकेन्द्रिया ग्राह्याः। इयं गाथा लेखनीया।

तत्रैकेन्द्रियस्य आहारशरीरस्पर्शनेन्द्रियाणप्राणाश्चत्वारः पर्याप्तयः। भाषा मनसो-रावरणीयम्।

पर्याप्तस्य षड्भिः परिपूर्णः।

विग तिग चदु पंचक्खा तसजीवा होंति संखादी द्वित्रिचतुपञ्चेन्द्रिया त्रससञ्ज्ञा-जीवाः शङ्खादयो ज्ञेयाः।

अत्र द्वीन्द्रियाः शङ्खादयः। तेषां कति प्राणाः? षट् प्राणाः पूर्वोक्ताश्चत्वारो रसनभाषा द्वे, एते पर्याप्तापर्याप्ताः। अत्र पर्याप्तस्य आहारशरीरस्पर्श(नरस)नेन्द्रिया-णप्राणभाषाः पञ्च, मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य चत्वारः पर्याप्तयः भाषाया अभावः।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के परिपूर्ण होने पर गर्भ से निकलना पर्याप्तक का लक्षण है। इन पर्याप्तियों की पूर्णता न होते हुए भी गर्भ से निकलना अपर्याप्त का लक्षण है। यहाँ गर्भ शब्द उपलक्षणमात्र हैं। एकेन्द्रिय आदि में इसे ग्रहण नहीं करना चाहिए। (यह गाथा लिखनी चाहिए।)

उनमें से एकेन्द्रिय जीवों के आहार, शरीर, स्पर्शनेन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। उन जीवों में भाषा व मन पर्याप्ति से सम्बन्धित आवरण होते हैं।

पर्याप्तक जीवों (संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों) की छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं।

विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय जीव त्रससंज्ञा को प्राप्त हैं। ये जीव शंखादि पर्यायों को धारण करने वाले हैं-ऐसा जानना चाहिए।

त्रस जीवों में शंखादि द्वीन्द्रिय जीव हैं। द्वीन्द्रिय जीवों के कितने प्राण पाए जाते हैं? उनके छह प्राण पाए जाते हैं। पूर्वोक्त चार (स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास) तथा रसनेन्द्रिय और भाषा ये दो। ये जीव पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों में आहार, शरीर,

ते च जीवाः समनस्का अमनस्काश्च भवन्तीत्याह-

समणा अमणा णेया पंचिदिय समनस्का अमनस्काश्च भवति। तत्र तिर्यञ्च-समनस्का अमनस्काश्च। येऽमनस्कास्ते गोरखरादयो जालन्धरमरुदेशादिषु देशेषु दृश्यन्ते। **णिम्मणा परे सव्वे** एकेन्द्रियद्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियनिर्मनसः।

ननु तेऽमनस्कास्तदा कथ्यन्ते। तेषां पञ्चेन्द्रियाप्रवृत्तिर्यतो मनःपूर्वकेन्द्रियप्रवृत्तिरिति शास्त्रवचनम्। अत्रोत्तरमाह-सर्वेषामेव जीवानां स्वभावत एवाहारभयमैथुनपरिग्रह-स्वरूपसञ्ज्ञाचतुष्टयं विद्यत एव प्रतीतश्च दृश्यते। यथा वृक्षस्य जलसिञ्चनाद् वृद्धिः। कुठारायुधपुरुषदर्शनात्कम्पः। वनिताचरणत्राटकनात्पुष्पनिर्गमो वृक्षमूलप्ररोहावष्टम्भनिधान-ग्रहणमिति। तस्मात्तेषां मनोव्यापारहिता प्रवृत्तिः पुनः प्रोच्यते।

तेषां सर्वथा मनसोऽभाव इति न, किन्तु शक्तिरूपत्वेन नास्ति। कुतः? पूर्वोपार्ज्जित-मतिज्ञानावरणकर्मोदयवशात्। सर्वथा यदि मनसोऽभावो भण्यते, तदान्यजन्मनि मनुष्यपर्याये

समणा अमणा णेया पंचिदिय पंचेन्द्रिय जीव समनस्क और अमनस्क होते हैं। तिर्यंच समनस्क और अमनस्क होते हैं। जो अमनस्क हैं वे गोर, खर आदि जालन्धर और मरु आदि देशों में देखे जाते हैं। **णिम्मणा परे सव्वे** एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मनरहित होते हैं।

शंका :- वे जीव अमनस्क तब कहलाते, जब उनके पंचेन्द्रियों की अप्रवृत्ति होती हो, क्योंकि मनःपूर्वक ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती हैं -ऐसा शास्त्र का वचन है।

समाधान :- यहाँ उत्तर देते हैं-सभी जीवों को स्वभाव से ही आहार, भय, मैथुन, परिग्रहरूप चार संज्ञाएँ होती हैं-ऐसा प्रतीति में आता है।

जैसे-वृक्ष की वृद्धि जलसिंचन से होती है। कुल्हाड़ी और पुरुष आदि को देखने से वृक्ष में कम्पन होता है, स्त्रियों के पादप्रहार से पुष्प खिलते हैं। वृक्ष के मूल धन की ओर बढ़ते हैं। इसीलिए उनकी प्रवृत्ति मनोव्यापार से रहित होती है।

पुनः कहते हैं-

उनको (असंज्ञियों को) सर्वथा मन का अभाव हो, ऐसा नही हैं, किन्तु मन शक्तिरूप से नहीं है। किस कारण से? पूर्वोपार्जित मतिज्ञानावरण कर्मोदय के वश से। यदि सर्वथा मन का अभाव कहा जाएगा तो अन्य

त्रीन्द्रियाः कुन्थुमत्कुणादयः, प्राणाः सप्त। पूर्वोक्ताः षट् प्राणाः घ्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्ताः। अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तयः पञ्च मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य पूर्ववत् चत्वारः।

चतुरिन्द्रियस्य प्राणाः अष्टौ, पूर्वोक्ताः सप्त चक्षुप्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्ताः। अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तयः पञ्च। मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य पूर्ववच्चत्वारः।

पञ्चेन्द्रियस्य तिर्यञ्चासञ्ज्ञिनां प्राणा नव। पूर्वोक्ताष्टौ श्रोत्रप्राणश्च। एते पर्याप्ता-पर्याप्ताः। अज्ञपर्याप्तस्य पर्याप्तयः पञ्च, मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य पूर्ववच्चत्वारः। पञ्चेन्द्रियस्य सञ्ज्ञिनः प्राणाः दश, पूर्वोक्ता नव मनोबलप्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्तश्च। पर्याप्तस्य पर्याप्तयः षट् । अपर्याप्तस्य पर्याप्तयश्चत्वारः। भाषामनसोऽभावः।

स्पर्शन-रसनाइन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। उनमें मन पर्याप्ति का अभाव है। अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में भाषा के अतिरिक्त उपर्युक्त चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

कुन्थु, खटमल आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं। इन जीवों के सात प्राण होते हैं-पूर्वोक्त छह और घ्राणेन्द्रिय। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों में पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं, मन नहीं होता। अपर्याप्तक जीवों में पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

(मच्छर, मक्खी आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं।) चतुरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण होते हैं-पूर्वोक्त सात और चक्षुरिन्द्रिय। ये जीव भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों में पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं, मन नहीं होता। अपर्याप्तक जीवों में पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

पंचेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच जीवों के नौ प्राण होते हैं-पूर्वोक्त आठ और श्रोत्रेन्द्रिय। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों में पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं, मन नहीं होता। अपर्याप्तक जीवों में पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों के दस प्राण होते हैं-पूर्वोक्त नौ और मनोबल। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों में छह पर्याप्तियाँ होती हैं। अपर्याप्तक जीवों में चार पर्याप्तियाँ होती हैं। उनमें भाषा और मन का अभाव होता है।

वे जीव समनस्क और अमनस्क होते हैं-ऐसा कहते हैं।

गृहीते सति विमनस्कत्वमायाति। एवं सति सर्वज्ञवचनविरोधः स्यात्। यतः **सुरणरणेरइया समनस्काः** आगमे प्रतिपादिताः। तिर्यञ्चो विकल्पनीयाः। तस्मात् कर्मोदयवशात् व्यवहारनयापेक्षया तेषाममनस्कत्वं न परमार्थतः, इति स्थिते च।

उत्थानिका :-

मार्गणागुणस्थानैः संसारिणो ज्ञातव्या इत्याह –

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।१३।।

जन्म में मनुष्यपर्याय ग्रहण करने पर भी मनरहितता का प्रसंग आयेगा और ऐसा होने पर सर्वज्ञ के वचन का विरोध होगा, क्योंकि **देव, मनुष्य और नारकी समनस्क होते हैं**–ऐसा आगम में प्रतिपादित किया गया है। तिर्यंचों में समनस्कता और अमनस्कतारूप दोनों ही विकल्प हैं। अतः कर्मोदयवशात् व्यवहारनय की अपेक्षा से उनका अमनस्कत्व है, परमार्थ से नहीं–ऐसा सिद्ध होता है।।११-१२।।

भावार्थ :-

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर हैं तथा दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस हैं।

जीवसमास चौदह हैं–एकेन्द्रिय के बादर सूक्ष्म, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय व पंचेन्द्रिय के संज्ञी–असंज्ञी। ये सातों ही पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं।।११,१२।।

पाठभेद :-

बायर = बादर इंदिय = इंदी।।११,१२।।

विशेष :-

टीकाकार के द्वारा बारहवीं गाथा की द्वितीय पंक्ति की टीका नहीं की गई।

उत्थानिकार्थ :-

मार्गणा और गुणस्थानों के द्वारा संसारी जीवों को जानना चाहिए, ऐसा कहते हैं –

टीका :-

ते च जीवा चतुर्दशमार्गणाभिश्चतुर्दशगुणस्थानैश्च ज्ञातव्या भवन्ति। कथम्भूताः? संसारिणा। कदा? **असुद्धणया** अशुद्धनयापेक्षया, **हु** पुनः। **सव्वे सुद्धा (सुद्धणया)** शुद्धनिश्चयनयापेक्षया सर्वे जीवाः शुद्धाः। अनन्तचतुष्टयात्मका इत्यर्थः।

मार्गणाः प्राह –

गइ इंदिये च काए जोए वेए कसायणाणे य।
संयमदंसणलेस्सा-भविया-सम्मत्तसण्णि-आहारे।।
(गोम्मटसार जीवकाण्ड = १४२)

अत्र गत्यादिषु जीवा अन्विष्यन्ते।

गइ देवगति मनुष्यनारकतिर्यक्सिद्धगतिश्चेति।

इंदिये एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाः। अतीन्द्रियाः सिद्धा इत्यर्थः।

गाथार्थ :-

तह तथा **संसारी** संसारी **असुद्धणया** अशुद्धनय से **चउदसहि** चौदह **मग्गणगुणट्ठाणेहि** मार्गणा व गुणस्थानों की अपेक्षा से **चउदसहि** चौदह प्रकार के **हवंति** होते हैं। **सुद्धणया** शुद्धनय की अपेक्षा से **सव्वे** सभी **हु** नियमतः **सुद्धा** शुद्ध होते हैं–ऐसा **विण्णेया** जानना चाहिए।।१३।।

टीकार्थ :-

वे जीव चौदह मार्गणाओं और गुणस्थानों के द्वारा जानने चाहिए। कौनसे जीव? संसारी। कब? **असुद्धणया** अशुद्धनय की अपेक्षा से। **हु** पुनः **सव्वे सुद्धा सुद्धणया** शुद्धनय की अपेक्षा से सभी जीव शुद्ध हैं–अनन्तचतुष्टयात्मक हैं, यह अर्थ है।

मार्गणाओं को कहते हैं –

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणाएँ हैं।

यहाँ गत्यादि में जीवों का अन्वेषण किया जाता है।

गइ–देवगति, मनुष्यगति, नरकगति, तिर्यंचगति और सिद्धगति।

इंदिए–एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अतीन्द्रिय सिद्ध।

काए पृथ्वीकायिकाः, अपकायिकाः, तेजकायिकाः, वातकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, त्रसकायिकाः, अकायिकाश्चेति।

जोए सत्यमनयोगी मृषामनयोगी सत्यमृषामनयोगी नसत्यमृषामनयोगी सत्यवचोयोगी असत्यवचोयोगी सत्यमृषावचोयोगी नसत्यमृषावचोयोगी औदारिककाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी परमौदारिककाययोगी च। तत्रौदारिको मनुतिरश्चाम्। मिश्रौ अपर्याप्तानाम्। परमौदारिकः केवलिनाम्। वैक्रियिककाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी। तत्र वैक्रियिको देवनारकाणाम्। मिश्रोऽपर्याप्तानाम्। आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी। तत्राहारककाययोगपरमर्द्धिमाहात्म्यषष्ठगुणस्थाने महर्षीणां भवति। यदा पदपदार्थसन्देहः समुत्पद्यते तदा उत्तमाङ्गे पुत्तलको निर्गच्छति। यत्रस्थ तीर्थङ्करदेवमन्तर्मुहूर्त्तमध्ये पश्यति। तत्प्रस्तावे यतेर्निश्चयः समुत्पद्यते। पुनस्तत्रैव प्रवेशं करोति।

काए–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और अकायिक।

जोए–सत्यमनोयोगी, असत्यमनोयोगी, उभयमनोयोगी, अनुभयमनोयोगी, सत्यवचनयोगी, असत्यवचनयोगी, उभयवचनयोगी, अनुभयवचनयोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, परमौदारिक काययोगी। मनुष्य और तिर्यंचों को औदारिक काययोग होता है। मनुष्य और तिर्यंच अपर्याप्तकों को औदारिकमिश्र काययोग होता है। केवलियों को परमौदारिक काययोग होता है।

वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्र काययोगी। इनमें से देव और नारकियों को वैक्रियिक काययोग होता है। उन्हीं को ही अपर्याप्तक अवस्था में वैक्रियिकमिश्र काययोग होता है।

आहारक काययोगी, आहारकमिश्र काययोगी। इनमें से परम ऋद्धि के महात्म्य से छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों को आहारक काययोग होता है। जब पद अथवा पदार्थ में सन्देह उत्पन्न होता है, तब उत्तम अंग से पुतला निकलता है। जहाँ भी तीर्थंकर देव होते हैं, उन्हें वह अन्तर्मुहूर्त में देखता है। उस कारण से यति को निश्चय उत्पन्न हो जाता है। वह पुतला पुनः शरीर में प्रवेश करता है।

(लिपिकार के द्वारा आहारकमिश्र काययोग, कार्मण काययोग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन का प्रकरण छूट गया है। लेश्या के प्रकरण में

मिश्रो पर्याप्तपद्मलेश्या। स्वपरपक्षरहितो निदानशोकभयरागद्वेषपरिवर्जितः शुक्ललेश्या इति।

भविया सिद्धयोग्याः जीवाः भव्याः, तद्विपरीता अभव्याः। भव्यत्वाभव्यत्वरहिताश्च।

सम्मत्त आप्तप्रतिपादितेषु पदार्थेषु जिनाज्ञया शास्त्राकर्णनात् श्रद्धापरः। उपशमसम्यग्दृष्टिः, क्षायिकसम्यग्दृष्टिः, क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिः, सासादनसम्यग्दृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, मिथ्यादृष्टिश्चेति। तत्र सम्यक्त्वस्य किमुपादानं कृतम्? अत्रोच्यते। यथा आम्रवनमध्ये निम्बोऽपि तद्गृह्णेन गृह्यते, यतो मिथ्यात्व त्रिधा मिथ्यात्वसासादनसम्यग्मिथ्यात्वभेदात्। को दृष्टान्तः? यथा यन्त्रमध्ये निक्षिप्ताः कोद्रवाः केचित्समस्ताः निर्गच्छन्ति, केचिदर्द्धदलिताः, केचिच्चूर्णीभूता इति। एतदेव व्याख्येयम्।

भी अपूर्णता है। हम जो कुछ समझ पाए हैं, उसे विशेष में लिख रहे हैं–कृपया पाठक उसे अवश्य पढें।–**सम्पादक**)

मिश्रपर्याप्तक जीवों की पद्मलेश्या होती है।

स्व–पर पक्ष से रहित, निदान, शोक, भय, राग और द्वेष से रहित जीवों की शुक्ललेश्या होती है।

भविया–सिद्धि के योग्य जीव भव्य होते हैं। उससे विपरीत जीव अभव्य होते हैं तथा सिद्धजीव भव्यत्व और अभव्यत्व से रहित होते हैं।

सम्मत्त–आप्त के द्वारा प्रतिपादित पदार्थों में, जिनाज्ञा से शास्त्र को श्रवण कर श्रद्धान करना सम्यक्त्व है।

उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि।

मिथ्यात्व में सम्यक्त्व के द्वारा क्या कार्य किया गया? उसे कहते हैं–जैसे आम्रवन में नीम का भी ग्रहण हो जाता है। (उसी प्रकार सम्यक्त्व मार्गणा में मिथ्यात्व का भी ग्रहण हो जाता है।) मिथ्यात्व तीन प्रकार का है–मिथ्यात्व, सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व।

इसके लिए कौनसा दृष्टान्त है?

जैसे यन्त्र में डाले गए कुछ कोद्रव पूर्ण रूप से निकलते हैं, कुछ अर्द्ध दलित निकलते हैं और कुछ चूर्ण हो कर निकलते हैं। इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।

तत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभ-मिथ्यात्वसासादनसम्यग्मिथ्यात्वसप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकसम्यग्दृष्टिः। अत्र सम्यक्त्वस्यावरणोपशमो न सम्यक्त्वस्य मूलकारणस्योपशमः।

एतासां सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात्क्षायिकसम्यग्दृष्टिः। अनन्तानुबन्ध्यादीनां षण्णां उदयाभावात् क्षयः सदवस्थोदयात् सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टिः। सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वमद्यापि न प्राप्नोति, अन्तराले वर्त्तमानः सासादनसम्यग्दृष्टिः। सर्वे देवा वन्दनीयाः न च निन्दनीया इति मिश्रपरिणामः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः। आप्तागमपदार्थेषु विपरीताभिनिवेशो मिथ्यादृष्टिः।

सण्णि मनोबलेन शिक्षालापग्राही सञ्ज्ञी, तद्विपरीत असञ्ज्ञी। सञ्ज्ञासञ्ज्ञत्वरहिताश्च।

आहारे विग्रहगतिप्राप्ताः जीवाः समुद्घातकेवलिनश्चायोगिनः सिद्धाश्च अनाहाराः।

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक सम्यग्दृष्टि होता है। यहाँ सम्यक्त्व के आवरण का उपशम है। सम्यक्त्व के मूल कारणों का उपशम नहीं है।

इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है।

अनन्तानुबन्धी आदि छह के उदयाभावरूप क्षय, सदवस्थारूप उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

सम्यक्त्व से पतित होने पर जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता ऐसा जो जीव अन्तराल में विद्यमान है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है।

सभी देव वन्दनीय हैं, कोई निन्दनीय नहीं है-ये मिश्रपरिणाम जिस जीव के हैं, वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है।

आप्त, आगम और पदार्थों में विपरीत श्रद्धान करने वाला जीव मिथ्यादृष्टि है।

सण्णि मन के बल से शिक्षा व वचन को ग्रहण करने वाला संज्ञी है। इससे विपरीत जीव असंज्ञी है। संज्ञी और असंज्ञीपने से रहित जीव भी होते हैं।

आहारे विग्रहगति को प्राप्त जीव, समुद्घात केवली, अयोगी और सिद्ध अनाहारक होते हैं।

शेषा आहारकाः जीवाः।

एवं चतुर्दशमार्गणा व्याख्याताः।

गुणठाणेहि य। चतुर्दशभिर्गुणस्थानैश्च जीवाः ज्ञातव्याः।

तत्राप्तागमपदार्थानामरुचयो मिथ्यादृष्टयः।

सम्यक्त्वं परित्यज्य मिथ्यात्वमप्राप्तान्तराले वर्त्तमानाः सासादनसम्यग्दृष्टयः।

सर्वे देवा वन्दनीया न च निन्दनीयाः, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः।

प्राणेन्द्रियेष्वविरतास्तत्त्वश्रद्धापरा असंयताः सम्यग्दृष्टयः।

त्रसवधाद्विरताः स्थावरवधादविरताः संयतासंयतसम्यग्दृष्टयः।

व्यक्ताव्यक्तविकथाकषायेन्द्रियनिद्राप्रणयप्रमादवशास्ते महाव्रतधारकाः प्रमत्तसंयताः।

नष्टाशेषप्रमादाव्रतशीलगुणान्विता ध्यानोपयुक्ता अप्रमत्तसंयताः।

शेष जीव आहारक होते हैं।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओं का व्याख्यान किया गया।

गुणठाणेहि य चौदह गुणस्थानों के माध्यम से जीवों का ज्ञान करना चाहिए।

जिसकी आप्त, आगम और पदार्थों में अरुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है।

सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व की प्राप्ति के अन्तराल में जो स्थित है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है।

सभी देव वन्दनीय हैं, कोई निन्दनीय नहीं है-ऐसा मानने वाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है।

प्राणी और इन्द्रियों के संयम से अविरत, श्रद्धानयुक्त जीव असंयत सम्यग्दृष्टि हैं।

त्रसजीवों की हिंसा से विरत और स्थावर जीवों की हिंसा से अविरत जीव संयतासंयत सम्यग्दृष्टि हैं।

व्यक्त और अव्यक्त विकथा, कषाय, इन्द्रिय, निद्रा और प्रणयरूप प्रमाद के वश रहने वाले महाव्रती प्रमत्तसंयत हैं।

जिन्होंने समस्त प्रमादों को नष्ट कर दिया है, जो व्रत-शील और गुणों से युक्त हैं और जो ध्यान में लीन हैं, वे अप्रमत्तसंयत हैं।

अतीत काल में स्थित परिणामों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न परिणामों से युक्त मोहनीय कर्म के उपशम या क्षपण में उद्यत जीवों के गुणस्थान

अतीतसमय-स्थितपरिणामैः सर्वथा असदृशपरिणामाः मोहस्योपशमक्षपणोद्यताः अपूर्वकरणास्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च।

एकस्मिन् समये संस्थानादिभिरेव परिणामैः परस्परं न व्यावर्त्तते, इत्यनिवृत्तयस्ते क्षयोपशमकाः क्षपकाश्च।

पूर्वापूर्वस्यात्मकं यद्वेदकत्वं तस्मादनन्तगुणहीनाः सूक्ष्मलोभे स्थिताः सूक्ष्मसाम्पराया-स्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च।

कतकफलसंयोगादवस्थितपङ्कस्वच्छजलवदुपशान्ताशेषमोहा उपशान्तकषायाः वीतरागाः छद्मस्था इत्यर्थः। छद्म इति ज्ञानावरणदर्शनावरणस्यास्तित्वात्।

स्फटिकमणिभाजनस्थितनिर्मलजलवत् क्षपितशेषमोहाः विशुद्धपरिणामाः वीतरागाः छद्मस्थाः।

केवलज्ञानप्रकाशध्वस्ताज्ञानान्धकारः नवकेवललब्धिसमन्वितः। द्रव्यमनोवाक्काय-योगसहायाद्दर्शनज्ञाने युगपज्जातकाः सयोगकेवलिनः।

लब्धयः -

को अपूर्वकरण कहते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव उपशमक और क्षपक ऐसे दो प्रकार के हैं।

एक समय में संस्थानादि परिणामों के द्वारा जो परस्पर में निवृत्ति को प्राप्त नहीं होते, वे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान -वर्ती जीव उपशमक और क्षपक ऐसे दो प्रकार के हैं।

पूर्व-पूर्व की अपेक्षा से जिनका जैसे एकत्व है, उनसे अनन्त गुण हीन सूक्ष्मलोभ में जो स्थित हैं, वे सूक्ष्मसाम्पराय हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव उपशमक और क्षपक ऐसे दो प्रकार के हैं।

कतक फल के संयोग से जल में कीचड़ नीचे बैठ चुका है, उसी प्रकार उपशान्त हो चुका है अशेष मोह जिनका, वे उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ हैं। छद्म अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरण। उनका अस्तित्व है जिनमें, वे छद्मस्थ हैं।

स्फटिकमणि के बर्तन में स्थित निर्मल जल के समान जिन्होंने सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का क्षय किया है, वे विशुद्ध परिणामी जीव क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ हैं।

दाणे लाहे भोए उवभोए वीरियसम्मत्ते।
दंसणणाणचरित्ते एदे णव जीवसब्भावा।।

चतुरशीतिलक्षणगुणाधिपतयः निरुद्धा अशेषयोगास्रवा अयोगिकेवलिनः।

एतानि चतुर्दशगुणस्थानानि।

केवलज्ञान के प्रकाश से ध्वस्त किया है अज्ञान अन्धकार जिन्होंने, जो नव केवललब्धियों से समन्वित हैं, द्रव्य मन-वचन और काययोग के सहयोग के बिना ही जिनको लब्धियाँ, दर्शन और ज्ञान युगपत् होता है, वे सयोगकेवली हैं।

लब्धियाँ-

दान, लाभ, भोग, उपयोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये जीव के नौ स्वभाव हैं।

चौरासी लाख गुणों के अधिपति, जिनके अशेष योग निरोध को प्राप्त हो चुके हैं, वे अयोगकेवली हैं।

ये चौदह गुणस्थान होते हैं**।।१३।।**

भावार्थ :-

अशुद्धनय से जीव चौदह गुणस्थान एवं चौदह मार्गणास्थानों की अपेक्षा से चौदह-चौदह भेद वाले हैं।

शुद्धनय की अपेक्षा से सभी जीव शुद्ध हैं**।।१३।।**

विशेष :-

टीकाकार ने औदारिक, औदारिक मिश्र व परमौदारिक ऐसे तीन भेद किए हैं। काययोग के सात भेदों में परमौदारिक काययोग नहीं है। (जिनका वर्णन टीका में छूट गया है, उनका व्याख्यान यहाँ किया जा रहा है।)

आहारकमिश्र काययोग : जब तक आहारक शरीर पूर्ण नहीं होता तब तक के काययोग को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं। परम ऋद्धि से सम्पन्न छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों को ही यह काययोग होता है।

कार्मणकायोग : कार्मण शरीर के निमित्त से होने वाले योग को कार्मण काययोग कहते हैं। यह काययोग विग्रहगति में तथा लोकपूरण और प्रतर समुद्घात में होता है।

उत्थानिका :-

ते च जीवाः सकलकर्मक्षयात्सिद्धा भवन्तीत्याह-

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयाग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहि संजुत्ता।।१४।।

टीका :-

ते च पूर्वोक्ता जीवाः सिद्धाः भवन्ति। कथम्भूता सन्तः? **णिक्कम्मा** ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तराया इत्यष्टकर्मरहिताः।

अट्ठगुणा -

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।

(लघुसिद्धभक्ति = १)

दर्शनमार्गणा : इस का वर्णन गाथा क्रमांक चार में किया गया है।

लेश्यामार्गणा : कषायानुरंजित योग की प्रवृत्ति लेश्या है। लेश्या के छह भेद हैं-कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

पहले गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों के छहों लेश्याएँ होती हैं। पाँचवें गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक तीन शुभलेश्याएँ होती हैं। आठवें गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक शुक्ललेश्या होती है। अयोगकेवली अवस्था एवं सिद्धों में कोई लेश्या नहीं होती**।।१३।।**

उत्थानिकार्थ :-

और वे जीव सकल कर्मों के क्षय से सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ :-

णिक्कम्मा कर्मरहित, **अट्ठगुणा** आठ गुणों से सहित, **चरमदेहदो** चरम देह से **किंचूणा** किंचित् न्यून, **णिच्चा** नित्य, **उप्पादवएहि** उत्पाद और व्यय से **संजुत्ता** संयुक्त, **लोयाग्गट्ठिदा** लोकाग्र पर स्थित **सिद्ध** सिद्ध हैं**।।१४।।**

टीकार्थ :-

और वे पूर्वकथित जीव सिद्ध होते हैं। किस प्रकार होते हैं? **णिक्कम्मा** ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्मों से रहित हैं।

वेदमार्गणा : वेद कर्म की उदीरणा होने पर जीव स्त्रीभाव, पुरुषभाव और नपुंसकभाव का वेदन करता है। वेद कर्म के उदय से होने वाले उन भावों को वेद कहते हैं।

वेद के तीन भेद हैं-पुंवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

नारकी जीव और सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसकवेदी होते हैं।

भोगभूमिज तिर्यंच-मनुष्यों में तथा समस्त देवों में पुंवेद और स्त्रीवेद होता है। कर्मभूमिज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंच व मनुष्य तीनों ही वेद वाले होते हैं।

कषायमार्गणा : क्रोध, मान, माया और लोभ आत्मगुणों को कसते हैं। अतः उन्हें कषाय कहते हैं। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और संज्वलन के भेद से क्रोध, मान, माया और लोभ के चार-चार भेद हैं।

क्रोध, मान और माया कषाएँ पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक नौ गुणस्थानों में पाए जाती हैं। लोभ कषाय पहले के दस गुणस्थानों तक रहता है।

ज्ञानमार्गणा : पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान इस प्रकार ज्ञानमार्गणा के आठ भेद हैं।

पहले और दूसरे गुणस्थान में तीन अज्ञान होते हैं।

चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त मति, श्रुत और अवधि-ज्ञान होता है।

मनःपर्यय ज्ञान छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है।

तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में व सिद्धों में केवलज्ञान होता है।

संयममार्गणा : असंयम, संयमासंयम, सामायिक,छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये सात भेद संयममार्गणा के हैं।

पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थानपर्यन्त असंयम रहता है।

पाँचवें गुणस्थान में देशसंयम पाया जाता है।

सामायिक और छेदोपस्थापना छठे गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक होता है।

परिहारविशुद्धि संयम छठे-सातवें गुणस्थान में होता है।

अन्त के चार गुणस्थानों में व सिद्धों में यथाख्यात संयम होता है।

अत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वसञ्ज्ञानां सप्तप्रकृतीनां क्षयः क्षायिकं सम्यक्त्वम्। अशेषविशेषतः सकलपदार्थेषु रुचि इत्यर्थः। तस्माच्च ये उत्पन्नाः दर्शनज्ञानमूलभूताः परमानन्दस्वरूपसंवेदका आत्मपरिणामास्ते एव सम्यक्त्वम्।

एतदेवानन्तसुखमुच्यते।

युगपत्सकलपदार्थज्ञातृत्वं ज्ञानम्।

युगपदशेषपदार्थावलोकनं दर्शनम्।

उक्तानामनन्तसुखादीनां सप्तानां गुणानां निरवधिकालनिरवधिमर्यादिकृत्य एक-समयान्तरमपि न कदाचिदन्यथाभावो वीर्यम्।

केवलज्ञानी एव यदमूर्तसिद्धस्वरूपं परिचेत्तुं शक्नोति नान्यः सूक्ष्मत्वम्।

एकस्मिन्सिद्धस्वरूपेऽसंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमवस्थितानामवकाशोऽवगाहनम्।

आठ गुण -

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये आठ गुण सिद्धों के होते हैं।

उसमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मि-थ्यात्व और सम्यक् प्रकृति नामक सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। इसका अर्थ है-अशेष रूप से सम्पूर्ण पदार्थों की रुचि। उससे जो उत्पन्न होते हैं, दर्शन-ज्ञान के मूल हैं, परमानन्द स्वरूप के संवेदक हैं-ऐसे आत्मपरिणाम ही सम्यक्त्व हैं।

इसे ही अनन्त सुख कहते हैं।

युगपत् सम्पूर्ण पदार्थों को जानना ज्ञान है।

युगपत् सम्पूर्ण पदार्थों का अवलोकन करना दर्शन है।

उक्त अनन्त सुखादि सात गुणों का निरवधिकाल व निरवधि मर्यादा करके एक समय भी अन्यथाभाव को प्राप्त न होना वीर्य है।

केवलज्ञानी ही जो अमूर्त सिद्धस्वरूप को जानने में शक्य हैं, अन्य नहीं। इसे सूक्ष्मत्व गुण कहते हैं।

एक सिद्धस्वरूप में असंख्यात सिद्धों का (अनन्त भी रह सकते हैं) एकत्र एक जगह अवकाश प्राप्त करना अवगाहन गुण है।

नैव गुरुत्वं नैव लघुत्वमगुरुलघुत्वम्।

असंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमस्थितानां परस्परसङ्घर्षणाभावोऽव्याबाधं चेति।

एवमष्टगुणसमन्विताः।

किंचूणा चरमदेहदो चरमदेहतः किञ्चूनत्रिभागेन हीनाः **लोयाग्गठिदा** लोकाग्रस्थिताः **णिच्चा** नित्यास्तेषां काले कल्प इति गतेऽपि गतिप्रच्युतिर्नास्ति। तथा **उप्पादवएहि संजुत्ता** उत्पादव्ययाभ्यां युक्तास्तौ द्वौ चोत्पादव्ययावाग्गोचरौ सूक्ष्मौ प्रतिक्षणविनाशिनौ।

उक्तं च -

सूक्ष्मद्रव्यादभिन्नाश्च, व्यावृताश्च परस्परम्।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते, जलकल्लोलवज्जले।।

(आलापपद्धति)

न गुरु है, न लघु है-यही अगुरुलघुत्व है।

असंख्यात सिद्धों का एकत्र रहते हुए (अनन्त सिद्धों का एकत्र रहते हुए) परस्पर संघर्षण का अभाव अव्याबाध गुण है।

इस प्रकार सिद्ध आठ गुणों से समन्वित होते हैं।

किंचूणा चरमदेहदो चरमदेह से किंचित् कम, त्रिभाग से हीन, **लोयाग्गठिदा** लोकाग्रस्थित, **णिच्चा** नित्य, कल्पकालों के व्यतीत हो जाने पर भी उनकी सिद्धालय से प्रच्युति नहीं होती। तथा **उप्पादवएहि संजुत्ता** उत्पाद और व्यय से युक्त हैं। वे उत्पाद-व्यय वचन के अगोचर हैं, सूक्ष्म हैं और प्रतिसमय विनाशी हैं।

कहा भी है-

जैसे जल में कल्लोलें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार द्रव्य में उत्पाद और व्यय होता है। वे दोनों सूक्ष्म हैं और द्रव्य से अभिन्न हैं, परन्तु परस्पर एक-दूसरे से भिन्न हैं**।।१४।।**

भावार्थः-

सिद्ध प्रभु आठ कर्मों से रहित और आठ गुणों से सहित होते हैं। उनका शरीर अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाला होता है। वे उत्पाद और व्यय से सहित होते हैं, नित्य होते हैं और लोकाग्र में स्थित होते हैं**।।१४।।**

उत्थानिका :-

इदानीं जीवद्रव्यं व्याख्याय अजीवद्रव्यपञ्चप्रकारं स्वरूपमाह-

अज्जीओ पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासो।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु।।१५।।

टीका :-

पुद्गलमूर्त रूपादिगुणः, शेषाः पुनरमूर्त्ताः। अत्र (अस्य) व्याख्यानं पूर्वमेव कृतम्।

उत्थानिका :-

तस्य पुदगलस्य किं स्वरूपं पर्याया इत्याह-

पाठभेद :-

लोयाग्गठ्ठिदा = लोयग्गठ्ठिदा।

उप्पादवएहि = उप्पादवएहिं।।१४।।

उत्थानिकार्थ :-

जीवद्रव्य का व्याख्यान करने के बाद अब अजीवद्रव्य के पाँच भेदों का स्वरूप कहते हैं-

गाथार्थ :-

पुण पुनः **पुग्गल** पुद्गल, **धम्मो** धर्म, **अधम्म** अधर्म, **आयासो** आकाश, **कालो** काल को **अज्जीओ** अजीव **णेओ** जानो।

रूवदिगुणो रूपादि गुणों के कारण से **पुग्गल** पुद्गल **मुत्तो** मूर्तिक है **दु** और **सेसा** शेष द्रव्य **अमुत्ति** अमूर्तिक हैं।।१५।।

टीकार्थः-

पुद्गल द्रव्य रूपादिगुणों से युक्त होने के कारण मूर्तिक है। शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। शेष व्याख्यान पूर्व में ही किया जा चुका है।।१५।।

भावार्थ :-

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच अजीवद्रव्य हैं।

रूपादि गुणों से सहित होने के कारण पुद्गल मूर्तिक है। शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। इन द्रव्यों का वर्णन पहली गाथा में किया जा चुका है।।१५।।

पाठभेद :-

अज्जीओ = अज्जीवो आयासो = आयासं।।१५।।

सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।।१६।।

टीका :-

पुग्गलदव्वस्स पज्जाया एते पुद्गलद्रव्यस्य पर्यायाः। के ते?

आत्मनः परिस्पन्दान्नानाप्रकाराणुसङ्घटनात्तालवोष्ठपुटव्यापारेण करचरणकाष्ठ-पाषाणादिपरस्परं सङ्घर्षणे च निष्पद्यते शब्दः।

बंधो स्निग्धं परमाणुद्वयेन सह रूक्षपरमाणूनां चतुर्णां संश्लेषः। एकेन स्निग्धेन सह त्रयाणां रूक्षाणां संश्लेषः। स्निग्धपरमाणुत्रयेण सह पञ्चानां रूक्षाणां संश्लेष इति। बन्धमुपलक्षणमेतत्।

सुहुमो परमाणुः सूक्ष्मः।

उत्थानिकार्थ :-

उस पुदगल का क्या स्वरूप है? और उसकी पर्याएँ कौनसी हैं? सो कहते हैं-

गाथार्थ :-

सद्दो शब्द, **बंधो** बंध, **सुहुमो** सूक्ष्म, **थूलो** स्थूल, **संठाण** संस्थान, **भेद** भेद, **तम** तम, **छाया** छाया, **उज्जोद** उद्योत, **आदव** आतप **सहिया** सहित **पुग्गलदव्वस्स** पुद्गल द्रव्य की **पज्जाया** पर्याएँ हैं।।१६।।

टीकार्थ :-

पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ये पुद्गल द्रव्य की पर्याएँ हैं। वे कौनसी हैं?

आत्मा के परिस्पन्द से, नाना प्रकार के संघटन से, तालु-ओष्ठ आदि के व्यापार से, हाथ, पैर, लकड़ी, पाषाण आदि के परस्पर घर्षण से शब्द उत्पन्न होता है।

बंधो स्निग्ध दो परमाणुओं के साथ चार रूक्ष परमाणुओं का संश्लेष, एक स्निग्ध परमाणु के साथ तीन रूक्ष परमाणुओं का संश्लेष, तीन स्निग्ध परमाणुओं के साथ पाँच रूक्ष परमाणुओं का संश्लेष, यह बन्ध का उपलक्षण है।

सुहुमो सूक्ष्म परमाणु।

थूलो स्कन्धरूपत्व स्थूलः।

संठाणभेद समचतुरस्रसंस्थानं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं स्वातिसंस्थानं वामलूराकृति-रित्यर्थः वामनसंस्थानं हुण्डकसंस्थानं चर्मकरदृतिरिव प्रकृतिरित्यर्थः। कुब्जकसंस्थानमिति।

तम अन्धकारः।

छाया वृक्षादिभवा।

उज्जोदा ताराचन्द्रमणिमाणिक्यादिभवा।

आदव आतपोऽग्निसूर्यभवः।

(टीकाकार ने संठाणभेद को एक पद मान कर टीका की है। उचित तो यह था कि संस्थान और भेद को अलग-अलग पद मान कर व्याख्यान करते।)

उत्थानिका :-

जीवपुद्गलयोर्धर्मगतिसहकारी भवतीत्याह -

थूलो स्कन्ध रूप होने से स्थूल।

संठाणभेद समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान (सर्प की बांबी के समान आकृति), वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान (चमड़े की मशक के समान आकृति) और कुब्जक संस्थान।

तम अन्धकार।

छाया वृक्षादि से उत्पन्न।

उज्जोद तारा, चन्द्र, मणि, माणिक्यों से उत्पन्न प्रकाश।

आदव आतप, अग्नि अथवा सूर्य से उत्पन्न प्रकाश।

भावार्थ :-

शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये पुद्गल द्रव्य की दस पर्याएँ हैं।।१६।।

विशेष :-

टीकाकार ने भेद पर्याय को स्वीकार किया है, परन्तु उसका अर्थ नहीं किया है। वस्तु को अलग-अलग करने को भेद कहते हैं।।१६।।

उत्थानिकार्थ :-

धर्म जीव और पुद्गल की गति में सहकारी होता है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई।।१७।।

टीका :-

गइसहयारी गतिसहकारी भवति। कोऽसौ? **धम्मो** धर्मद्रव्यम्। केषाम्? पुद्गलजीवानाम्। कथम्भूतानाम्? **गइपरिणयाण** गतिकर्मोदयाच्चतुर्गतिपरिणतानाम्।

अत्राह-यदि तस्य गतिसहकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति तदा स्थितिकुर्वतस्तेषां किन्नु नानयति। कुतो? अथ, **अच्छंताणेव सो णेइ** धर्मस्तेषां अच्छन्तां तान् जीवपुद्गलान् स्थितिं कुर्वतां न नयति। कुतो? अधर्मद्रव्योदयात्।

अस्यैवार्थस्य समर्थनमुपमानमाह-**तोयं जह मच्छाणं** यथा तोयं पानीयं मत्स्यानां सहकारित्वे भवति स तान्मत्स्यान् स्थितिं कुर्वतो न नयति, एवं धर्मः।

(टीका में **गमणसहयारी** के स्थान पर **गइसहयारी** पाठ का प्रयोग किया गया है।)

जह जैसे **गइपरिणयाण** गतिपरिणत **मच्छाणं** मछलियों को **तोयं** जल **गमणसहयारी** गमन में सहकारी होता है, **तह** वैसे **पुग्गलजीवाण** पुद्गल और जीवों को **धम्मो** धर्म **गमणसहयारी** गमन में सहकारी होता है। **सो** वह **अच्छंता** न चलते हुए को **णेव** नहीं **णेई** चलाता।।१७।।

टीकार्थः-

गइसहयारी गति में सहकारी होता है। कौन? **धम्मो** धर्मद्रव्य। किनके गति में सहायक होता है? पुद्गल और जीवों के। किस प्रकार? **गइपरिणयाण** गति कर्मोदय से चतुर्गति में परिणति करने वाले।

शंका :- यदि गतिक्रिया में सहकार्य करने की धर्मद्रव्य की ऐसी शक्ति है, तब वह स्थिति करने वाले जीव और पुद्गलद्रव्य को गमन नहीं कराता- ऐसा क्यों?

समाधान :- अच्छंता णेव सो णेइ धर्म उन स्थिर रहते हुए जीव पुद्गलों को चलाता नहीं है। क्यों? अधर्मद्रव्य के कारण से।

इस अर्थ के समर्थन के लिए उपमा कहते हैं। **तोयं जह मच्छाणं** जैसे पानी मछलियों को सहकारी होता है, परन्तु वह स्थिति करते हुए उन मछलियों को चलाता नहीं है। उसी प्रकार धर्म भी है।।१७।।

उत्थानिका :-

पुद्गलजीवान्नपि स्थितिकारित्वेऽधर्मो भवतीत्याह-

ठाणजुयाण अहम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई।।१८।।

टीका :-

ठाणसहयारी स्थितिः सहकारी भवति। कोऽसौ? **अहम्मो** अधर्मः, केषाम्? **पुग्गलजीवाण** पुद्गलजीवानाम्। कथम्भूतानाम्? **ठाणजुयाण** स्थितिकर्मोदयात् स्थिति कुर्वताम्।

भावार्थ :-

जिस प्रकार चलती हुई मछलियों के चलने में जल सहकारी होता है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल को चलने में सहकारी होता है। जैसे जल रुकी हुई मछलियों को बलात् नहीं चलाता, उसी प्रकार धर्मद्रव्य रुके हुए जीव और पुद्गल को बलात् नहीं चलाता।।१७।।

उत्थानिकार्थ :-

अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक होता है, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

जह जैसे **ठाणजुयाण** ठहरते हुए **पहियाणं** पथिकों के लिए **छाया** छाया **ठाणसहयारी** ठहरने में सहायक होती है, **तह** वैसे **पुग्गलजीवाण** पुद्गल और जीवों को **अहम्मो** अधर्म **ठाणसहयारी** ठहरने में सहायक होता है। **सो** वह **गच्छंता** चलते हुए को **णेव** नहीं **धरई** ठहराता है।।१८।।

टीकार्थ :-

ठाणसहयारी स्थिति में सहकारी होता है। कौन? **अहम्मो** अधर्म। किन द्रव्यों की स्थिति में सहकारी होता है? **पुग्गलजीवाण** पुद्गल और जीवों के स्थिति में सहकारी होता है। किस प्रकार? **ठाणजुयाण** स्थिति कर्म के उदय से, स्थिति करते हुए।

शंका :- यदि स्थितिकार्य में अधर्मद्रव्य की ऐसी शक्ति है, तब वह गमन करते हुए जीव और पुद्गल की स्थिति क्यों नहीं कराता?

अत्राह-यदि तस्य स्थितिकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति तदा गच्छन्तास्तान् किन्न स्थितिं कारयति? अत्रोच्यते-**गच्छंता णेव सो धरई** स अधर्मो गच्छन्तान् नैव धरति तान् जीवपुद्गलानां गच्छन्तान् नैव स्थितिं कारयति। कुतो? धर्मद्रव्योदयात्।

अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थमुपमानमाह-**छाया जह पहियाणं** यथा छाया पथिकान् स्थिति सहकारित्वे भवति सति तान् पथिकान् गच्छन्तोऽपि न स्थितिं कारयति। एवमधर्मः पुद्गलजीवानामपि।

उत्थानिका :-

इदानीं पञ्चानामपि द्रव्याणामवकाशदाने आकाशद्रव्यं भवतीत्याह -

अवगासदाणजोग्गं जीवाईणं वियाण आयासं।
जोण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं।।१९।।

समाधान :- गच्छंता णेव सो धरई वह अधर्मद्रव्य चलते हुए को नहीं रोकता। अर्थात् अधर्मद्रव्य गमन करने वाले जीवद्रव्य को और पुद्गलद्रव्य को गमन करते हुए स्थिति को प्राप्त नहीं कराता। ऐसा क्यों? धर्मद्रव्य के कारण से।

इसी अर्थ का समर्थन करने के लिए उपमा कहते हैं-**छाया जह पहियाणं** जैसे छाया पथिकों को स्थिति में सहकारी होते हुए भी उन चलते हुए पथिकों की स्थिति नहीं कराती, उसी प्रकार जीव और पुद्गलों को अधर्मद्रव्य भी स्थिति नहीं कराता।।१८।।

भावार्थ :-

जिस प्रकार ठहरते हुए पथिक को ठहरने में छाया सहकारी कारण होती है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य रुकते हुए जीव और पुद्गलद्रव्य के रुकने में सहयोगी होता है।

जिस प्रकार छाया पथिक को बलात् नहीं रोकती, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य चलते हुए जीव और पुद्गल को बलात् नहीं रोकता।।१८।।

पाठभेद :-

ठाणजुयाण = ठाणजुद्दाण अहम्मो = अधम्मो ।।१८।।

उत्थानिकार्थ :-

इन पाँचों ही द्रव्यों को अवकाश देने के लिए आकाशद्रव्य होता है, ऐसा कहते हैं-

टीका :-

सो लोगो सः लोको भवति। सः कः? **जावदिए आयासे संति** यावत्परिणामे आकाशे सन्ति विद्यन्ते। के ते? **धम्माधम्माकालो** धर्माधर्मकालाः। न केवलमेते **पुग्गलजीवा य** पुद्गलजीवाश्च, **तत्तो परदो अलोगुत्तो** तस्मात् परो अलोक उक्तः।

उत्थानिका :-

इदानीं कालस्वरूपमाह –

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो हु परमट्ठो।।२१।।

टीका :-

लोक और अलोक के भेद से आकाश दो प्रकार का है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ :-

जावदिए जितने **आयासे** आकाश में **धम्माधम्मा** धर्म, अधर्म **कालो** काल **य** और **पुग्गलजीवा** पुद्गल, जीव **संति** हैं, **सो** वह **लोगो** लोक है।

तत्तो उससे **परदो** परे **अलोग** अलोक **उत्तो** कहा गया है।।२०।।

टीकार्थ :-

सो लोगो वह लोक है। वह कौन? **जावदिए आयासे संति** जितने आकाश में है। कौन विद्यमान हैं? **धम्माधम्माकालो** धर्म, अधर्म और काल। केवल ये ही नहीं हैं, **पुग्गलजीवा य** पुद्गल और जीव भी हैं। **तत्तो परदो अलोगुत्तो** उसके पश्चात् अलोक कहा गया है।

भावार्थ :-

आकाश के जितने भाग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उतने आकाश को लोकाकाश कहते हैं।

लोकाकाश से बाहर अवस्थित अनन्त आकाश ही अलोकाकाश कहलाता है।।२०।।

उत्थानिकार्थ :-

अब काल का स्वरूप कहते हैं–

गाथार्थ :-

टीका :-

वियाण विशेषेण जानीहि त्वं हे भव्य ! किं तत्? **आयासं** आकाशम्। कथम्भूतम्? **अवगासदाणजोग्गं** अवकाशदानयोग्यम्। केषाम् ? **जीवाईणं** जीवादीनां पञ्चानामपि तदाकाशम्। **जोण्हं** जैनमते, **दुविहं** द्विप्रकारम्। कथम्? **लोगागासं अल्लोगागासमिदि** लोकाकाशमलोकाकाशमिति, तदेवाकाशद्रव्यम्।

उत्थानिका :-

लोकालोकप्रकारेण द्विप्रकारं भवतीत्याह –

धम्माधम्माकालो पुग्गलजीवा य संति जावदिए।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो।।२०।।

गाथार्थ :-

जीवाईणं जीवादिकों को **अवगासदाणजोग्गं** अवकाश दान के योग्य **जोण्हं** जिनेन्द्रकथित **आयासं** आकाश **वियाण** जानो। वह **लोगागासं** लोकाकाश **अल्लोगागासं** अलोकाकाश **इदि** इस प्रकार **दुविहं** दो प्रकार का है।।१९।।

टीकार्थ:-

वियाण हे भव्य ! तुम विशेष रूप से जानो। किसे जानो? **आयासं** आकाश को जानो। वह आकाश कैसा है? **अवगासदाणजोग्गं** अवकाश दान के योग्य, किनको अवकाशदान देता है? **जीवाईणं** जो जीवादि पाँचों ही द्रव्यों को अवकाश देता है, वह आकाश है। **जोण्हं** जैनमत में (आकाश) **दुविहं** दो प्रकार का है। कैसे? **लोगागासं अल्लोगागासमिदि** लोकाकाश और अलोकाकाश। वही आकाशद्रव्य है।।१९।।

भावार्थ :-

जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँच द्रव्यों को अवकाश (ठहरने के लिए स्थान) प्रदान करता है वह आकाशद्रव्य है। उसके लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद हैं।।१९।।

पाठभेद :-

जीवाईणं = जीवादीणं। जोण्हं = जेण्हं।।१९।।

उत्थानिकार्थ :-

पुद्गलकर्माणुद्रव्यप्रच्यवनादुत्पन्नः समयरूपः, मुख्यकालस्य पर्यायाख्यः क्षणध्वंसी व्यवहारकालः। **परिणामादीलक्खो** स च व्यवहारकालः परिणामैर्लक्ष्यते नवजीर्णरूपैः। **वट्टणलक्खो हु परमट्ठो** द्रव्याणि वर्तनां याति स्वपरिणतिं नयति। तदेव लक्षणस्य स वर्तनालक्षणः। **हु** पुनः **परमट्ठो** परमार्थकालः। अयं उक्तो ज्ञायते, काल इति लोकवचनात्। स च नित्योऽन्यथा कथं द्रव्यवत्ता?

उत्थानिका :-

तस्य निश्चयकालस्य किं स्वरूपमित्याह-

लोयायासएसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि।।२२।।

जो जो **दव्वपरिवट्टरूवो** द्रव्यों के परिवर्तन स्वरूप है, **सो** वह **कालो** काल **हवेइ** है। **परिणामादीलक्खो** परिणामादि लक्षण वाला **ववहारो** व्यवहार काल है **हु** और **वट्टणलक्खो** वर्तनालक्षण वाला **परमट्ठो** परमार्थकाल है।।२१।।

टीकार्थ :-

पुद्गल कर्माणु द्रव्य के प्रच्यवन से उत्पन्न समयरूप मुख्यकाल की पर्याय क्षणध्वंसी व्यवहारकाल है। **परिणामादीलक्खो** वह व्यवहार काल परिणाम के द्वारा नवीनता और जीर्णतारूप से देखा जाता है। **वट्टणलक्खो हु परमट्ठो** द्रव्यों की वर्तना करता है, स्व-परिणति को प्राप्त कराता है। उसी लक्षण वाला यह वर्तना **हु** पुनः **परमट्ठो** परमार्थकाल है-ऐसा कहा जाता है। काल इस शब्द को लोकवचन से ग्रेहण करना चाहिए। वह नित्य है, अन्यथा उसकी द्रव्यता कैसे होगी?।।२१।।

भावार्थ :-

जितने काल में एक पुद्गलपरमाणु मन्दगति से एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर गमन करता है, उतने काल को समय कहते हैं। समय, घण्टा, घड़ी आदि सब व्यवहारकाल है। प्रत्येक द्रव्य के परिणमन में सहयोग करने वाला वर्तना लक्षणरूप काल निश्चयकाल है।।२१।।

पाठभेद :-

हु = य।।२१।।

उत्थानिकार्थ :-

टीका :-

ते कालाणू असंखदव्वाणि ते कालाणवोऽसंख्यातद्रव्याणि ज्ञातव्याः। ते के? **जे ठिया** ये स्थिताः **हु** स्फुटम्, क्व? **लोयायासपएसे** लोकाकाशप्रदेशे। कथं स्थिताः? **एक्केक्के** एकैके एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकपरिपाट्या। अयमर्थ : लोकाकाश -स्य यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः कालाणवो, निष्क्रिया, एकैकाकाशप्रदेशेन एकैकावृत्या- लोकं व्याप्य स्थिताः रूपादिगुणविरहितामूर्त्ताः। कथं लोकव्याप्यस्थिताः? **रयणाणंरासी -मिव** यथा रत्नानां राशयः सङ्घाततारारामेकम् (?) व्याप्य तिष्ठति तथा ते तिष्ठन्ति।

उस निश्चय काल का क्या स्वरूप है? सो कहते हैं-

गाथार्थ :-

एक्केक्के एक-एक **लोयायास** लोकाकाश के **पएसे** प्रदेश पर **जे** जो **रयणाणं** रत्नों की **रासीमिव** राशी के समान **एक्केक्का** एक-एक **कालाणू** कालाणु **ठिया** स्थित हैं, **ते** वे **हु** निश्चय से **असंखदव्वाणि** असंख्यातद्रव्य हैं।।२२।।

टीकार्थः-

ते कालाणु असंखदव्वाणि वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं-ऐसा जानना चाहिए। वे कौन? **जे ठिया** जो स्थित हैं, **हु** निश्चियतः, कालाणु कहाँ स्थित हैं? **लोयायासपएसे** लोकाकाश के प्रदेश में। कैसे स्थित हैं? **एक्केक्के** एक-एक आकाश के प्रदेश पर एक-एक इस प्रकार स्थित हैं। इसका यह अर्थ है कि लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने कालाणु हैं। वे निष्क्रिय हैं, वे एक-एक आकाशप्रदेश पर एक-एक रूप से लोक को व्याप कर स्थित हैं और वे रूपादि गुणों से रहित अमूर्त हैं। वे लोक में व्याप्त होकर किस प्रकार स्थित हैं? **रयणाणं रासीमिव** जैसे रत्नों की राशि व्याप कर स्थित रहती है, उसी प्रकार वे कालाणु रहते हैं।।२२।।

भावार्थ :-

लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है। उसके एक- एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान एक-एक कालाणु स्थित है। उसको निश्चयकाल कहते हैं। काल द्रव्य अमूर्तिक है।।२२।।

पाठभेद :-

उत्थानिका :-

एतानि षड्द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकाया भवन्तीत्याह-

एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु।।२३।।

टीका :-

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **उत्तं** प्रदिपादितम्। किं तत्? **दव्वं** द्रव्यम्। इदं प्रत्यक्षीभूतम्, कतिभेदम्? **छब्भेयं** षड्भेदम्। कस्मात्? **जीवाजीवप्पभेददो** जीवाजीवप्रभेदतः। **कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु** एतानि षड्द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकायाः ज्ञातव्याः **दु** पुनः।

लोयायासपएसे = लोयायासपदेसे एक्केक्के = इक्केक्के
एक्केक्का = इक्केक्का **।।२२।।**

उत्थानिकार्थ :-

इन छह द्रव्यों में कालद्रव्य को छोड़ कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय होते हैं, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

एवं इस प्रकार **जीवाजीवप्पभेददो** जीव और अजीव के भेद से **इदं** यह **दव्वं** द्रव्य **छब्भेयं** छह प्रकार का **उत्तं** कहा गया है **दु** और **कालविजुत्तं** काल को छोड़ कर **पंच** पाँच **अत्थिकाया** अस्तिकाय **णादव्वा** जानने चाहिए**।।२३।।**

टीकार्थ :-

एवं पूर्वकथित प्रकार से **उत्तं** प्रतिपादित किए गए। किनका प्रतिपादन किया गया? **दव्वं** द्रव्य **इदं** प्रत्यक्षभूत। द्रव्य के कितने भेद हैं? **छब्भेयं** छह भेद हैं। किस प्रकार छह भेद हैं? **जीवाजीवप्पभेददो** जीव और अजीव के प्रभेद के कारण। **कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु** इन छह द्रव्यों में से कालरहित पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं-ऐसा जानना चाहिए। **दु** पुनः**।।२३।।**

भावार्थ :-

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों में से कालरहित पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं**।।२३।।**

विशेष :-

उत्थानिका :-

एतेषां पञ्चास्तिकायानामस्तिकायत्वं कथं सिद्धमित्याह -

संति जदो ते णिच्चं अत्थि त्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य।।२४।।

टीका :-

संति जदो ते णिच्चं ते पञ्चापि यतः यस्मात् कारणात् नित्यं सन्ति विद्यन्ते, स्वरूपेण। **अत्थि त्ति भणंति जिणवरा** तस्मात् कारणात् विद्यन्ते इति जिनवराः वदन्ति। अत्रास्तित्वं साधितम्।

जम्हा बहुदेसा यस्माद् बहुप्रदेशास्ते काया इव शरीराणीव, अत्र कायित्वं साधितम्।

प्राप्त प्रति में एवं प्राप्त टीका में **पंच** शब्द का प्रयोग नहीं था। परन्तु, गाथा छन्द के नियम को व अन्य पाठों को देख कर पंच शब्द को हमने दोनों स्थानों पर स्वीकार किया है**।।२३।।**

उत्थानिका :-

इन पाँच अस्तिकायों का अस्तिकायत्व किस प्रकार सिद्ध है? सो कहते हैं-

गाथार्थ :-

जदो क्योंकि **ते** वे **णिच्चं** नित्य **संति** विद्यमान हैं। **तेण** इसीलिए **जिणवरा** जिनेन्द्र **अत्थि** अस्ति **त्ति** ऐसा **भणंति** कहते हैं। **य** और **जम्हा** क्योंकि **काया** काया के **इव** समान **बहुदेसा** बहुप्रदेशी हैं। **तम्हा** इसीलिए **काया** काय है **य** और **अत्थिकाया** अस्तिकाय हैं**।।२४।।**

टीकार्थ :-

संति जदो णिच्चं चुँकि वे पाँचों भी जिस कारण से नित्य, स्वरूप की अपेक्षा से विद्यमान रहते हैं, **अत्थि त्ति भणंति जिणवरा** उस कारण से वे अस्ति हैं-ऐसा जिनवर कहते हैं। यहाँ अस्तित्व सिद्ध किया गया।

जम्हा बहुदेसा क्योंकि वे बहुप्रदेशी हैं **काया इव** शरीरों के समान। यहाँ कायित्व सिद्ध किया गया।

तम्हा काया य उस कारण वे काय हैं।

तम्हा काया य तस्मात् कायाश्चेति।

एवं मिलित्वा **अत्थिकाया य** अस्तिकायाश्च भण्यन्ते।

अत्रपूर्वपक्ष : ननु कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः। जीवादीनां कथमत्रोच्यते?

तेषामुपचारात् अध्यारोप्यते। कुतः उपचारः?

यथा शरीरं पुद्गलद्रव्यप्रचयात्मकं तथा जीवादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षयेव काया इति।

उत्थानिका :-

कालस्याकायत्वं कथमित्याह-

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पएसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ।।२५।।

ऐसे मिल कर **अत्थिकाया य** अस्तिकाय कहलाते हैं।

शंका :- काय शब्द शरीर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ जीवादि के लिए काय शब्द का प्रयोग कैसे किया गया?

समाधान :- जीवादि के लिए काय शब्द का प्रयोग उपचार से किया गया है।

शंका :- उपचार क्यों किया गया?

समाधान :- जैसे शरीर पुद्गलद्रव्य-प्रचयात्मक है, उसी प्रकार जीवादि द्रव्य भी प्रदेशप्रचय की अपेक्षा से काया के समान है।।२४।।

भावार्थ :-

अस्ति और काय इन दो शब्दों से अस्तिकाय शब्द बना है। द्रव्य स्वभाव से विद्यमान हैं। अतः वे अस्ति हैं। जीवादिक पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। अतः वे काय हैं। वे अस्ति भी हैं एवं काय भी। अतः वे अस्तिकाय हैं।।२४।।

पाठभेद :-

संति जदो णिच्चं = संति जदो तेणेदे।।२४।।

उत्थानिकार्थ :-

काल का अकायत्व किस प्रकार है? उसे कहते हैं-

गाथार्थ :-

टीका :-

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे पएसा भवन्ति असंख्याताः प्रदेशा जीव-धर्माधर्माणाम्। **अणंत आयासे** अनन्तप्रदेशा आकाशस्य। **मुत्ते तिविह पएसा** मूर्ते पुद्गले त्रिविधाः प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च, **कालस्सेगो** कालस्यैकः प्रदेशः, कालाणूनां रत्नराशिवदवस्थितत्वात्। **ण तेण सो काओ** तेन कारणेन सः कालः काय सञ्ज्ञां न लभते।

जीवे जीव में **धम्माधम्मे** धर्म और अधर्म में **असंखा** असंख्यात, **आयासे** आकाश में **अणंत** अनन्त, **मुत्ते** पुद्गल में **तिविह** तीनों ही प्रकार के **पएसा** प्रदेश **होंति** होते हैं। **कालस्स** काल का **एगो** एक प्रदेश है। **तेण** इसीलिए **सो** वह **काओ** अस्तिकाय **ण** नहीं है।।२५।।

टीकार्थ :-

होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे पएसा जीव, धर्म और अधर्म के असंख्यात प्रदेश हैं। **अणंत आयासे** आकाश के अनन्त प्रदेश हैं। **मुत्ते तिविह पएसा** मूर्तिक पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों ही प्रकार के प्रदेश हैं। **कालस्सेगो** काल का एक प्रदेश है, क्योंकि कालाणु रत्नराशि के समान अवस्थित होते हैं। **ण तेण सो काओ** उस कारण से काल को काय संज्ञा प्राप्त नहीं होती।।२५।।

भावार्थ :-

एक जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी होते हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं और अलोकाकाश के अनन्त। पुद्गल संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी होता है। ये पाँचों ही द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। अतः अस्तिकाय है। काल एक प्रदेशी होता है। अतः वह अस्तिकाय नहीं है।।२५।।

पाठभेद :-

पएसा = पदेसा।।२५।।

विशेष :-

टीका में **परमाणूणां रत्नराशिवदवस्थितत्वात्** ऐसा पाठ पाया जाता है। परन्तु, वस्तुतः **परमाणूणाम्** के स्थान पर **कालाणूणाम्** पाठ चाहिए।।२५।।

उत्थानिकार्थ :-

उत्थानिका :-

अत्रपूर्वपक्षः। ननु पुद्गलपरमाणुरप्येकप्रदेशी तस्यापि कायत्वानुपपत्तेः। अस्य निराकरणार्थमिदमाह –

एयपदेसो वि अणु णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू।।२६।।

टीका :-

णाणाखंधप्पदेसदो वि अणु होदि बहुदेसा उवयारा नानापुद्गलस्कन्धरूपस्यैक-प्रदेशोऽपि अणु बहुप्रदेशोऽपि भवति। कुतः? उपचारात्।

यतस्तस्य पुद्गलस्य परमाणोः पुनरपि स्कन्धरूपत्वे परिणतिरस्ति, कालाणोः पुनः परिणतिर्नास्ति स्कन्धरूपत्वेन, यतो रत्नानां राशय इव ते स्थितास्तस्मात्, **तेण य काओ भणंति सव्वण्हू** तेन कारणेन च कायत्वं वदन्ति पुद्गलपरमाणोस्तत्त्वज्ञाः।

यहाँ पूर्वपक्षकार (प्रश्नकर्त्ता) का कथन है कि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है। उसका भी कायत्व सिद्ध नहीं होता। पूर्वपक्षकार के मत का निराकरण करते हुए यहाँ कहते हैं–

गाथार्थ :-

एयपदेसो एक प्रदेशी होते हुए **वि** भी **अणु** अणु **णाणाखंधप्पदेसदो** नाना स्कन्धों का कारण होने से **बहुदेसो** बहुप्रदेशी **होदि** होता है **य** और **तेण** इसीलिए **सव्वण्हू** सर्वज्ञ **उवयारा** उपचार से **काओ** काय **भणंति** कहते हैं**।।२६।।**

टीकार्थ :-

णाणाखंधप्पदेसदो वि अणु होदि बहुदेसो उवयारा अनेक पुद्गल स्कन्ध रूप बनने की शक्ति वाला एक प्रदेशी भी अणु बहुप्रदेशी होता है। कैसे? उपचार से।

चुँकि उस पुद्गल के परमाणु की पुनः स्कन्धरूप परिणति होती है। कालाणु की परिणति स्कन्धरूप नहीं होती, क्योंकि वे रत्नों की राशि के समान स्थित रहते हैं।

तेण य काओ भणंति सव्वण्हू इस कारण से तत्त्वज्ञ पुद्गल परमाणु को अस्तिकाय कहते हैं**।।२६।।**

भावार्थ :-

उत्थानिका :-

इदानीं प्रदेशलक्षणमाह–

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं।।२७।।

टीका :-

तं खु पदेसं जाणे तं खु स्फुटं प्रदेशं जानाम्यहम्। तं कम्? **जावदियं आयासं** यावत्प्रमाणमाकाशम्। किं विशिष्टम्? **अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं** अविभागीकृत पुद्गलद्रव्यस्थानदानयोग्यम्।

अत्र पूर्वपक्ष–ननु अविभागीकृतपुद्गलद्रव्येण यावदवष्टब्धं रुद्धमाकाशं तत्प्रदेशमुक्तम्। कथं तावत्प्रदेशे सर्वपदार्थानामवगाहना?

अणु एकप्रदेशी है। अतः नियमानुसार वह अप्रदेशी ही ही है। उसमें स्निग्धगुण और रूक्षगुण पाया जाता है। उन गुणों के कारण वह स्कन्धरूप बन सकता है। अतः जिनेन्द्र भगवान ने पुद्गल को उपचार से बहुप्रदेशी कहा जाता है।

कालाणु में स्निग्ध–रूक्ष गुण नहीं पाया जाता। अतः स्कन्धरूप परिणमन करने की शक्ति नहीं होती। अतः उसे उपचार से भी अस्तिकाय नहीं कहा जाता**।।२६।।**

उत्थानिका :-

अब प्रदेश का लक्षण कहते हैं –

गाथार्थः-

जावदियं जितना **आयासं** आकाश **अविभागीपुग्गलाणु** अविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा **वट्टद्धं** व्याप्त हो, **तं** उसे **खु** निश्चय से **सव्वाणु** सम्पूर्ण अणुओं को **ट्ठाणदाण** स्थान देने में **अरिहं** समर्थ **पदेसं** प्रदेश **जाणे** जानो**।।२७।।**

टीकार्थ :-

तं खु पदेसं जाणे उसे मैं निश्चय से प्रदेश जानता हूँ। किसे? **जावदियं आयासं** जितने आकाश को, किस विशेषता से युक्त? **अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं** अविभागी पुद्गल द्रव्य को स्थान देने योग्य।

अत्रोच्यते, आकाशस्यार्थेवगाहनालक्षणत्वात्तादृशी शक्तिरस्ति, एकस्मिन् प्रदेशे जीवादीनां पञ्चानामपि समवायः समाहितं तथापि तस्य तत्परिणामित्वम्।

अयमत्र दृष्टान्तः यथा गुह्यनागनिष्क्रमध्ये सुवर्णलक्षेऽपि प्रविष्टे नागस्य तन्मात्रता, तथाकाशप्रदेशस्याप्यवगाहने तादृशी शक्तिरस्ति।

शंका :- अविभागी पुद्गल द्रव्य के द्वारा आकाश का जितना भाग रोका गया है उसे प्रदेश कहते हैं।

उतने प्रदेश में सम्पूर्ण पदार्थों की अवगाहना किस प्रकार हो सकती है?

समाधान :- द्रव्यों को अवगाहन देना आकाश का लक्षण होने से उसमें वैसी शक्ति होती है। आकाश द्रव्य के एकप्रदेश में जीवादि पाँचों ही द्रव्यों का समवाय समाहित है। ऐसा होते हुए भी आकाश परिणामी है।

यहाँ यह दृष्टान्त है, जैसे-गूढ़ नागरस के गुटके में बहुत-सा सुवर्ण प्रवेश करने पर भी उस गूढ़ नागरस की वही मात्रा रहती है। उसी प्रकार आकाशप्रदेश की अवगाहना में भी वैसी ही शक्ति होती है**।।२७।।**

भावार्थ :-

जितने आकाश को एक पुद्गल परमाणु रोक लेता है, उतने आकाश को प्रदेश कहते हैं। वह प्रदेश संसारवर्ती सभी द्रव्यों को स्थान देने में समर्थ होता है**।।२७।।**

इस प्रकार अवचूरि टीकायुक्त दव्वसंगहो ग्रन्थ के भाषानुवाद में पहला अधिकार समाप्त हुआ।

जिस प्रकार अमृत का सेवन करने से क्लेश मिटता है व पौष्टिकता का आविर्भाव होता है, उसी प्रकार चारित्र का परिपालन करने से आत्मा के सम्पूर्ण क्लेश विलीन हो जाते हैं और आत्मा पुष्ट होती है। जिस प्रकार विष का सेवन करने से महान कष्ट भोगना पड़ता है तथा प्राणों का वियोग भी होता है, उसी प्रकार विषय-भोगों से जीव अनेक कर्मों का बन्ध कर लेता है तथा दारुण दुःखों को भोगते हुए नरक-निगोदादि दुःखप्रद पर्यायों को प्राप्त करता है। दुःखों को नष्ट करने के लिए संयम का हस्तावलम्बन आवश्यक होता है। इस संसार में वे धन्य हैं, जिन्हें संयमरत्न प्राप्त हुआ है।

ॐ

दूसरा अधिकार

उत्थानिका :-

इदानीं जीवानां पुद्गलसम्बन्धे सति परिणामविशेषसम्भवात् पदार्थानाह -

आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामि।।२८।।

टीका :-

ते वि समासेण पभणामि तेऽपि संक्षेपेण प्रभणामि। ते के? **जे** ये **आसवबंधण-संवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे** आस्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः सपुण्यपापाः, कथम्भूताः? एते **जीवाजीवविसेसा** अत्र जीवपुद्गलयोर्विशेषाः। यतो जीवस्य पुद्गलसम्बन्धादशुभपरिणामास्तस्मात्पापम्, पापादास्रवस्तस्मात्कर्मबन्धः।

उत्थानिकार्थ :-

अब जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से जो परिणामविशेष उत्पन्न होते हैं, उन पदार्थों को कहते हैं -

गाथार्थ :-

जे जो **आसव** आस्रव, **बंधण** बन्ध, **संवर** संवर, **णिज्जर** निर्जरा, **मोक्खो** मोक्ष, **सपुण्णपावा** पुण्य और पापसहित **जीवाजीवविसेसा** जीव और अजीव के भेद हैं, **ते** उन्हें **वि** भी **समासेण** संक्षेप से **पभणामि** मैं कहता हूँ**।।२८।।**

टीकार्थ :-

ते वि समासेण पभणामि उनको भी मैं संक्षेप से कहता हूँ। किनका वर्णन करता हूँ? **जे** जो **आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे** आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। ये कैसे हैं? ये **जीवाजीवविसेसा** जीव और पुद्गल की पर्यायें हैं । चुँकि, जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से अशुभ परिणाम होते हैं, उससे पाप होता है, पाप से आस्रव और आस्रव से कर्मबन्ध होता है।

कर्मबन्ध-निराकरणाय संवरनिर्जरा, संवरनिर्जराभ्यां पुण्यम्, पुण्याच्छुभपरिणतिः, शुभपरिणतेः कर्मक्षयः, कर्मक्षयान्मोक्ष इति।

तत्र शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः।

आत्मकर्मणोरन्योन्यप्रवेशात् प्रदेशात्मको बन्धः।

आस्रवनिरोधो संवरः।

एकदेशकर्मक्षयलक्षणा निर्जरा।

सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः।

अव्रतपरित्यागलक्षणं पुण्यम्।

मिथ्यात्वप्रवर्त्तनलक्षणं पापम्।

उत्थानिका :-

कर्मबन्ध का निराकारण करने के लिए संवर और निर्जरा होती है। संवर और निर्जरा से पुण्य, पुण्य से शुभ परिणति, शुभपरिणति से कर्मक्षय और कर्मों के क्षय से मोक्ष होता है।

उन पदार्थों में शुभ और अशुभ कर्म के आगमन का जो द्वार है, वह आस्रव है।

आत्मा व कर्मों का अन्योन्यप्रवेश होकर एक प्रदेशावगाही हो जाना बन्ध है।

आस्रव का निरोध संवर है।

कर्म का एकदेश क्षय होना निर्जरा है।

सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होना मोक्ष है।

अव्रत का परित्याग करने को पुण्य कहते हैं।

मिथ्यात्व मे प्रवर्त्तन करना पाप है।

भावार्थ :-

पदार्थ नौ होते हैं। यथा-जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। ये सब जीव और अजीव की पर्यायें हैं॥२८॥

पाठभेद :-

पभणामि = पभणामो॥२८॥

उत्थानिकार्थ :-

इदानीं आस्रवस्वरूपमाह-

आसवादि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासओ जिणुत्तो दव्वासवणं परो होदि॥२९॥

टीका :-

स विण्णेओ भावासओ जिणुत्तो स विज्ञेयो भावास्रवो जिनोक्तः, कः सम्बन्धी? **अप्पणो** आत्मनः। स कः? **आसवदि जेण कम्मं परिणामेण** आस्रवति कर्म येन परिणामेण। **दव्वासवणं परो होदि** सः भावास्रवो द्रव्यास्रवणे हेतुर्भवति, परिणामेण शुभाशुभरूपेण यदुपार्ज्जितशुभाशुभरूपास्रवः, स एव ज्ञानावरणादिस्वरूपेण परिणत एव द्रव्यास्रवो भवतीत्यर्थः।

अब आस्रव के स्वरूप को कहते हैं -

गाथार्थ :-

अप्पणो आत्मा के **जेण** जिस **परिणामेन** परिणाम से **कम्मं** कर्म **आसवदि** आता है, **स** वह **जिणुत्तो** जिनेन्द्रकथित **भावासओ** भावास्रव **विण्णेओ** जानो। **दव्वासवणं** द्रव्यास्रव **परो** अन्य **होदि** होता है॥२९॥

टीकार्थ :-

स विण्णेओ भावासओ जिणुत्तो उसे जिनेन्द्रकथित भावास्रव जानना चाहिए। भावास्रव किसके सम्बन्ध से होता है? **अप्पणो** आत्मा के सम्बन्ध से होता है। उसका स्वरूप क्या है? **आसवदि जेण कम्मं परिणामेण** जिस परिणाम से कर्म आता है। **दव्वासवणं परो होदि** वह भावास्रव द्रव्यास्रव का हेतु होता है। शुभाशुभ परिणामों से उपार्जित जो शुभाशुभ आस्रव है, वही ज्ञानावरणादि रूप से परिणत द्रव्यास्रव होता है-यह अर्थ है।

भावार्थ :-

जिन परिणामों से पुद्गलकर्मों का आगमन होता है, उन परिणामों को भावास्रव कहते हैं। ज्ञानावरणादि कर्मों के आने को द्रव्यास्रव कहते हैं।

भावास्रव द्रव्यास्रव का निमित्त कारण है तथा द्रव्यास्रव भावास्रव का निमित्त कारण है॥२९॥

पाठभेद :-

दव्वासवणं = कम्मासवणं॥२९॥

उत्थानिका :-

एतद् द्वयोर्मध्ये भावास्रवस्वरूपमाह-

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो स विण्णेया।

पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स॥३०॥

टीका :-

स विण्णेया सम्यक्प्रकारेण विज्ञेयाः। के ते भेदाः? कस्य? **पुव्वस्स** पूर्वस्य, भावास्रवस्य इत्यर्थः। किं नामानो भेदाः? **मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो** मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगक्रोधादयः। कुतः? **पण पण पणदस तिय चदु भेदा दु** पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रय चत्वारो भेदात्।

तत्र मिथ्यात्वं पञ्चप्रकारम्। सर्वं क्षणिकम् इत्येकान्तदर्शी बौद्धाः। सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्येकान्तदर्शी ब्रह्माद्वैतवादी। विनयादेव मोक्ष इत्येकान्तदर्शी शैवाः। जिनस्य भोजनं

उत्थानिकार्थ :-

इन दोनों में से भावास्रव का स्वरूप कहते हैं -

गाथार्थ :-

पुव्वस्स (पूर्व के) भावास्रव के **मिच्छत्त** मिथ्यात्व, **अविरदि** अविरति, **पमाद** प्रमाद, **जोग** योग, **कोहादयो** क्रोधादि **दु** और (वे) **कमसो** क्रम से **पण** पाँच, **पण** पाँच, **पणदस** पन्द्रह, **तिय** तीन, **चदु** चार **भेदा** भेद **विण्णेया** जानने चाहिए॥३०॥

टीकार्थ:-

स विण्णेया सम्यक् प्रकार से जानना चाहिए। उसके कितने भेद हैं? किसके? **पुव्वस** पूर्व के, भावास्रव के। उन भेदों का नाम क्या है? **मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो** मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोधादि। किस प्रकार? **पण पण पणदस तिय चदु भेदा दु** पाँच, पाँच पन्द्रह, तीन और चार भेद से।

उनमें मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है। सभी वस्तुएँ क्षणिक हैं-ऐसे एकान्तदर्शी बौद्ध हैं। निश्चय से ये सब ब्रह्म हैं-ऐसे एकान्तदर्शी ब्रह्माद्वैतवादी हैं। विनय से ही मोक्ष होता है-ऐसे एकान्तदर्शी शैव हैं। जिनेन्द्र को भोजन करते हुए, आभरणसहित मोक्ष होता है, स्त्री का निर्वाण होता है-ऐसे एकान्तदर्शी

कुर्वतः साभरणे मोक्षः स्त्रीनिर्वाणं च इत्येकान्तदर्शी श्वेतपटः। विकल्पसङ्कल्पकारकात् यथा ज्ञानात्मको मोक्षस्तथाज्ञानादेव इति मस्करपूर्णः, श्रीपार्श्वनाथशिष्योऽप्येकान्तदर्शी। अविरति पञ्चप्रकारी हिंसा, असत्यम्, चौर्यम्, मैथुनसेवा, परिग्रहस्वीकाररूपाः। प्रमादाः पञ्चदशप्रकाराः स्त्रीभक्तराजचौरकथाश्चत्वारः। क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः। इन्द्रियप्रवृत्तयः पञ्च। निद्रास्नेहश्च। योगास्त्रिप्रकारोऽशुभमनोवाक्कायरूपाः। क्रोधादयश्चतुःप्रकारः। स च प्रमादमध्ये पतितो दृष्टव्याः।

श्वेताम्बर हैं। विकल्प और संकल्प का कारक होन से जैसे ज्ञानात्मक मोक्ष होता है, वैसे अज्ञान भी ही मोक्ष होता है-ऐसा मानने वाला श्री पार्श्वनाथ का शिष्य मस्करीपूरण भी एकान्तवादी है।

अविरति = हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुनसेवा और परिग्रहस्वीकाररूप पाँच प्रकार की है।

प्रमाद के पन्द्रह प्रकार हैं। स्त्रीकथा-भक्तकथा-राजकथा और चोरकथा ये चार विकथाएँ, क्रोध-मान-माया और लोभ ये चार कषाएँ, पाँच इन्द्रिय प्रवृत्तियाँ, निद्रा और स्नेह।

अशुभ मन-वचन-कायरूप तीन योग हैं।

क्रोधादि चार प्रकार के हैं। उसे प्रमाद में ही गर्भित जानना चाहिए।

भावार्थ :-

पाँच मिथ्यात्व, पाँच अविरति, पन्द्रह प्रमाद, तीन योग और चार कषाय इस प्रकार भावास्रव के बत्तीस भेद हैं।

बौद्ध एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। ब्रह्माद्वैतवादी विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। श्वेताम्बर संशय मिथ्यादृष्टि हैं। शैव विनय मिथ्यादृष्टि हैं तथा मस्करी-पूरण अज्ञान मिथ्यादृष्टि हैं॥३०॥

पाठभेद : -

कोहादयो स = कोहादओथ॥३०॥

विशेष :-

टीका में **क्रोधश्चतुःप्रकारः** यह पाठ है। मेरे मतानुसार **क्रोधादय-श्चतुःप्रकारः** ऐसा पाठ होना चाहिए। अथवा, **क्रोधश्चतुःप्रकारः, एवं मानादिकमपि** ऐसा पाठ होना चाहिए॥३०॥

उत्थानिकार्थ :-

उत्थानिका :-

इदानीं द्रव्यास्रवस्य द्वितीयस्य स्वरूपमाह-

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासओ स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो।।३१।।

दव्वासवो स णेओ द्रव्यास्रवः स ज्ञेयः, कतिभेदाः? **अणेयभेओ** अनेकभेदाः। केन कथितः? **जिणक्खादो** जिनेन प्रतिपादितः । स कः? **जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि** योग्यं यत्पुद्गलं समास्रवति। केषां योग्यम्? **णाणावरणादीणं** ज्ञानावरणादीनां, कर्मणामष्टानां अष्टभावास्रवो हि द्रव्यास्रवस्य हेतुः।

अब दूसरे आस्रव के अर्थात् द्रव्यास्रव के स्वरूप को कहते हैं -

गाथार्थ :-

णाणावरणादीणं ज्ञानावरणादि के **जोग्गं** योग्य **जं** जो **पुग्गलं** पुद्गल **समासवदि** आता है, **स** वह **जिणक्खादो** जिनेन्द्रकथित **अणेयभेओ** अनेक भेदों वाला **दव्वासओ** द्रव्यास्रव **णेओ** जानो।।३१।।

टीकार्थ :-

दव्वासओ स णेओ उसे द्रव्यास्रव जानो। द्रव्यास्रव के कितने भेद हैं? **अणेयभेओ** अनेक भेद हैं। किसने कहे हैं? **जिणक्खादो** जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं। वे कौनसे हैं? **जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि** जो योग्य पुद्गल आस्रव को प्राप्त होता है।

किनके योग्य? **णाणावरणादीणं** ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य। आठ भावास्रव निश्चय से द्रव्यास्रव के हेतु हैं।।३१।।

भावार्थ :-

भावास्रव का निमित्त पाकर ज्ञानावरणादि कर्मों के योग्य पुद्गल द्रव्य का जो आस्रव होता है, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं।

द्रव्यास्रव के अनेक भेद हैं, क्योंकि जिस प्रकार ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के द्रव्यकर्मों के आस्रव के कारण से द्रव्यास्रव के आठ भेद सम्भावित हैं, उसी प्रकार एक सौ अड़तालीस और असंख्यात प्रकार के द्रव्यकर्म होने से द्रव्यास्रव के भी उतने ही भेद होंगे।।३१।।

उत्थानिका :-

इदानीं भावबन्धद्रव्यबन्धयोः स्वरूपमाह -

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो।।३२।।

टीका :-

भावबंधो सो स भावबन्धो भवति। स कः? **जेण दु चेदणभावेण** येन पुनश्चैतन्यभावेन। **बज्झदि कम्मं** बध्यते कर्म **इदरो** इतरः द्रव्यबन्धः। स कथम्भूतः? **कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं** कर्मात्मप्रदेशानां परस्परप्रवेशनम्।

पाठभेद :-

दव्वासओ = दव्वासवो।।३१।।

विशेष :-

उत्थानिका में **द्रव्यास्रवस्य द्वितीयस्वरूपमाह** ऐसा लिखा है। उस स्थान पर **द्वितीयास्रवस्य स्वरूपमाह** ऐसा हमने किया है।।३१।।

उत्थानिकार्थ :-

अब भावबन्ध और द्रव्यबन्ध के स्वरूप को कहते हैं-

गाथार्थ :-

जेण जिस **चेदणभावेण** चैतन्यभावों से **कम्मं** कर्म **बज्झदि** बन्धता है, **सो** वह **भावबंधो** भावबन्ध है **दु** और **कम्मादपदेसाणं** कर्म और आत्मप्रदेशों का **अण्णोण्णपवेसणं** अन्योन्यप्रवेश होना **इदरो** द्रव्यबन्ध है।।३२।।

टीकार्थ :-

भावबंधो सो वह भावबन्ध है। वह कौन? **जेण दु चेदणभावेण पुनः** जिस चैतन्यभाव से **कम्मं** कर्म **बज्झदि** बन्धता है। **इदरो** इतर, द्रव्यबन्ध, है। वह कैसा है? **कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं** कर्म और आत्मप्रदेशों के परस्पर प्रवेशरूप है।।३२।।

भावार्थ :-

जिन चैतन्यमयी परिणामों से कर्मबन्ध होता है, वह भावबन्ध है। आत्मप्रदेश एवं कर्मप्रदेशों का परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश होने को द्रव्यबन्ध कहते हैं।।३२।।

उत्थानिका :-

स च बन्धश्चतुर्विधो भवति-

पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगापयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति।।३३।।

टीका :-

चदुविधो बंधो चतुर्विधो बन्धो भवति। कस्मात्? स **पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेस-भेदा दु** प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात्। स कस्य, कस्माद्बन्ध इति? **जोगा पयडिपदेसा** अत्राशुभमनोवचनकायेभ्यः प्रकृतिप्रदेशबन्धौ भवतः। **ठिदिअणुभागा कसायदो हुंति** स्थित्यनुभागबन्धौ कषायतो भवतः। तत्र ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बन्धः।

मिथ्यात्वासंयमकषाययोगवशात् कर्मत्वमुपगतानां ज्ञानावरणादिकर्मप्रदेशानां यावत् कालेनान्यस्वरूपेण परिणतिं याति कालस्तस्य कालस्य स्थितिरिति संख्या।

उत्थानिकार्थ :-

वह बन्ध चार प्रकार का होता है-

गाथार्थ :-

बंधो बन्ध **पयडि** प्रकृति, **ठिदि** स्थिति, **अणुभाग** अनुभाग, **पदेसभेदा** प्रदेश के भेद से **चदुविधो** चार प्रकार का है **दु** और **पयडिपदेसा** प्रकृति-प्रदेशबन्ध, **जोगा** योग से **ठिदिअणुभागा** स्थिति-अनुभागबन्ध **कसायदो** कषाय से **हुंति** होता है।।३३।।

टीकार्थ :-

चदुविधो बंधो बन्ध चार प्रकार का होता है। वह कैसे? **पयदिट्ठिदि अणुभागप्पदेस भेदा दु** प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से। वह बन्ध किसको कैसे होता है?

जोगा पयडिपदेसा अशुभमन-वचन-काय से प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है। **ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति** स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय से होता है। वहाँ ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियों का बन्ध होता है।

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के कारण कर्मत्व को प्राप्त ज्ञानावरणादि कर्मप्रदेशों की जितने कालपर्यन्त अन्यस्वरूप से परिणति नहीं होती, उस काल की स्थिति संज्ञा है।

तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामुत्कृष्टस्थितिः सागरोपमानां त्रिंशत्कोटीकोट्यः। मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोट्यः, नामगोत्रयोर्विंशतिकोटीकोट्यः। आयुष्कस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा।

जघन्यस्थितिर्वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्त्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ। शेषाणामन्तर्मुहूर्त्ताः, एतेषां स्थितिबन्धः।

अणुभागः कर्मणां रसशक्तिर्वा अनुभागस्तस्य भागोऽनुभागबन्धः।

प्रदेशतोऽनुकर्मानुबन्धः कर्मप्रदेशास्तच्चैकस्मिन् जीवप्रदेशेऽनन्तानन्तास्तिष्ठन्ति। तेषां बन्धः प्रदेशबन्धः।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है। मोहनीयकर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर है।

वेदनीयकर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है। नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है।

शेष कर्मों की (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, आयु और अन्तराय) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

ये कर्मों का स्थितिबन्ध है।

कर्मों की रसशक्ति अथवा अनुभाग का विभाजन अनुभागबन्ध है।

प्रदेश से कर्मों का अनुबन्ध अर्थात् जीव के प्रदेश में कर्मों के प्रदेश अनन्तानन्त रहते हैं। उनका बन्ध प्रदेशबन्ध है।।३३।।

भावार्थ :-

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश के भेद से बन्ध के चार भेद हैं।

प्रकृतिबन्ध : कर्मों में उनके स्वभाव की प्राप्ति होना प्रकृतिबन्ध है।

स्थितिबन्ध : आत्मा के साथ कर्मों के रहने की मर्यादा स्थिति है। उस स्थिति के बन्ध को स्थितिबन्ध कहते हैं।

अनुभागबन्ध : कर्मों की फलदान-शक्ति को अनुभाग कहते हैं। कर्मों में अनुभाग के नियत होने को अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्रदेशबन्ध : बद्ध कर्मों के प्रदेशों की संख्या को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्रकृति और प्रदेशबन्ध का कारण योग है तथा स्थिति व अनुभागबन्ध का कारण कषाय है।।३३।।

उत्थानिका :-

इदानीं संवरस्य भेदद्वयमाह -

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो।।३४।।

टीका :-

सो भावसंवरो खलु स भावसंवरो भवति **खलु** स्फुटम्। स कः? **चेदणपरिणामो** यश्चैतन्यपरिणामः स्वस्वरूपपरिणतिः। किंविशिष्टः? **जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू** समागच्छतः कर्मण आस्रवनिरोधहेतुः, स एव चैतन्यपरिणामः **दव्वासवरोहणे अण्णो** द्रव्यास्रवरोधनेऽन्यो द्वितीयः।

पाठभेद :-

हुंति = होंति।।३३।।

विशेष :-

मेरे विचारानुसार टीका में **तत्र ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बन्धः** के स्थान पर **तत्र ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बन्धः प्रकृतिबन्धः** होना चाहिए।

योग चाहे शुभ हो अथवा अशुभ, दोनों से प्रकृति और प्रदेशबन्ध होता है। अतः टीका में अत्राशुभमनोवचनकायेभ्यः इस पाठ के स्थान पर अत्र शुभाशुभमनोवचनकायेभ्यः यह पाठ शुद्ध जान पड़ता है।।३३।।

उत्थानिकार्थ :-

अब संवर के दो भेदों को कहते हैं -

गाथार्थ :-

जो जो **चेदणपरिणामो** चैतन्यपरिणाम **कम्मस्स** कर्म के **आसवनिरोहणे** आस्रव का निरोध करने में **हेदू** हेतु है, **सो** वह **भावसंवरो** भावसंवर है। **दव्वासवरोहणे** द्रव्यास्रव का निरोध करने में कारण **खलु** निश्चयतः **अण्णो** अन्य (द्रव्यसंवर) है।।३४।।

टीकार्थ :-

सो भावसंवरो खलु वह भावसंवर है। **खलु** निश्चय से। वह कौन? **चेदणपरिणामो** जो चैतन्यपरिणाम अर्थात् स्व-स्वरूप परिणति। किस प्रकार? **जो कम्मस्सासवणिराहणे हेदू** आते हुए कर्मों के आस्रवनिरोध का हेतु, वही

उत्थानिका :-

तस्यैव निरोधने विशेषमाह -

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णादव्वा दव्वसंवरविसेसा।।३५।।

टीका :-

णादव्वा दव्वसंवरविसेसा द्रव्यसंवरविशेषा ज्ञातव्याः। कतिसंख्योपेताः? **बहुभेया** बहुभेदाः। के ते? इत्याह-**वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य चारित्तं** च तपः समितिगुप्तिः धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयश्चारित्रं च।

चैतन्यपरिणाम भावसंवर है। **दव्वासवरोहणे अण्णो** द्रव्यास्रव का निरोध करना दूसरा संवर (द्रव्यसंवर) है।

भावार्थ :-

जिन चैतन्यमयी परिणामों से कर्म का आना रुक जाता है, उन परिणामों को भावसंवर कहते हैं। जो द्रव्यास्रव का निरोध करता है, वह द्रव्यसंवर कहलाता है।।३४।।

उत्थानिकार्थ :-

उस आस्रवनिरोध में जो विशेष है, उसको कहते हैं -

गाथार्थ :-

वदसमिदीगुत्तीओ व्रत, समिति, गुप्ति **धम्माणुपेहा** धर्म, अनुप्रेक्षा **परीसहजओ** परीषहजय **य** और **चारित्तं** चारित्र ये **बहुभेया** अनेक प्रकार के **दव्वसंवरविसेसा** द्रव्यसंवर के भेद **णादव्वा** जानने चाहिए।।३५।।

टीकार्थ :-

णादव्वा दव्वसंवरविसेसा द्रव्यसंवर के भेद जानने चाहिए। द्रव्यसंवर कितने भेदों से युक्त है? **बहुभेया** अनेक भेदों से युक्त है। वे भेद कौनसे हैं? सो कहते हैं-**वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य चारित्तं** व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र।

उनमें बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से तप बारह प्रकार का है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश

तत्र तपो द्वादशप्रकारं बाह्याभ्यन्तरभेदात्। अनशनमवमौदर्यं वृत्तिपरिसंख्यानं रसपरित्यागः विविक्तशय्यासनं कालक्लेशो बाह्यं तपः षड्विधम्। प्रायश्चित्तं विनयं वैयावृत्यं स्वाध्यायः व्युत्सर्गं ध्यानं चाभ्यन्तरतपः षड्विधम्।

समितयः पञ्चप्रकाराः, ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपणव्युत्सर्गश्चेति।

गुप्तयस्त्रिप्रकाराः मनोवचनकायरूपाः।

धर्मो दशप्रकाराः, उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमस्तपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्माः।

अनुप्रेक्षा द्वादशप्रकारा ज्ञातव्याः। अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्रवसंवर-निर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मश्चेति।

परीषहजयः द्वाविंशतिप्रकाराः क्षुधापिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।

ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं।

ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और व्युत्सर्ग ये पाँच प्रकार की समितियाँ हैं।

मन, वचन और काय के भेद से गुप्ति के तीन भेद हैं।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।

अनुप्रेक्षाएँ बारह जाननी चाहिए। यथा-

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म।

परीषहजय के बाईस भेद हैं।

यथा-क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन।

चारित्र के तेरह भेद हैं।

यथा-हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परीग्रह से विरति रूप पाँच प्रकार के व्रत, समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और प्रत्याख्यान ये छह आवश्यक तथा अःसही और निःसही॥३५॥

चारित्रत्रयोदशप्रकारं हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिः पञ्चप्रकाराः।

समतास्तुतिवन्दनाप्रतिक्रमणस्वाध्यायप्रत्याख्यानानि षट्, अःसही निःसही चेति चारित्रम्।

उत्थानिका :-

साम्प्रतं निर्जराभेदद्वयमाह-

जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।

~~भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा॥३६॥~~

भावार्थ :-

पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहजय और तेरह चारित्र ये सब द्रव्यसंवर के कारण हैं॥३५॥

पाठभेद :-

णादव्वा = णायव्वा। दव्वसंवरविसेसा = भावसंवरविसेसा॥३५॥

विशेष :-

गाथा में **वद** शब्द है। टीकाकार ने भी **वद** शब्द स्वीकार किया है, किन्तु वर्णन तप का किया है। तप संवर व निर्जरा का विशेष कारण है, परन्तु गाथा में **वद** के स्थान पर तप का वर्णन किया जाना आश्चर्यकारी है।

टीकाकार ने पाँच व्रत, छह आवश्यक और अःसही तथा निःसही को तेरह प्रकार का चारित्र माना है।

ग्रन्थान्तरों में पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति को तेरह प्रकार का चारित्र कहा है। पाँच परमेष्ठिओं को नमन, छह आवश्यक और अःसही तथा निःसही को ग्रन्थान्तरों में तेरह प्रकार के करण में अन्तर्भूत किया है। मुझे लगता है कि टीका की प्रतिलिपि करने वाले महानुभाव के द्वारा कुछ अंश छुट गया है॥३५॥

उत्थानिकार्थ :-

अब निर्जरा के दो भेदों का कथन करते हैं -

गाथार्थ :-

जहकालेण यथाकाल में **य** और **तवेण** तप से **भुत्तरसं** जिसका फल भोग लिया गया है-ऐसा **कम्मपुग्गलं** कर्मपुद्गल **जेण** जिस **भावेण** भाव से **सडदि**

टीका :-

जेण भावेण सडदि येन परिणामेण सडति गलति, किं तत्? **कम्मपुग्गलं** कर्मरूपं पुद्गलम्। कथम्भूतम्? **भुत्तरसं** भुक्तो रसः शक्तिर्यस्य तद्भुक्तरसम्। केन कृत्वा? **जह कालेण तवेण य** यथाकालेन सविपाकरूपेण तपसा च, हठादविपाकरूपेण इत्येवं द्विविधा निर्जरा ज्ञातव्या। **तस्सडणं च** तत्कर्मणो गलनं एषा द्रव्यनिर्जरा इति द्विप्रकारा ज्ञातव्या।

उत्थानिका :-

झड़ता है **च** और **तस्सडणं** कर्मों का झड़ना **इदि** ऐसी **णिज्जरा** निर्जरा **दुविहा** दो प्रकार की **णेया** जाननी चाहिए**।।३६।।**

टीकार्थ :-

जेण भावेण सडदि जिस परिणाम से सड़ता है अथवा गलता है, क्या गलता है? **कम्मपुग्गलं** कर्मरूप पुद्गल। किस प्रकार गलता है? **भुत्तरसं** भोग ली है रस अर्थात् शक्ति जिसकी। किसके द्वारा? **जहकालेण तवेण य** जैसे कालानुसार सविपाकरूप से तथा तप से हठपूर्वक पका कर अर्थात् अविपाकरूप से। ये निर्जरा के दो भेद जानने चाहिए। **तस्सडणं** और उन कर्मों का गलना द्रव्यनिर्जरा है। इस प्रकार निर्जरा के दो प्रकार जानने चाहिए**।।३६।।**

भावार्थ :-

उदयागत कर्म फल देकर झड़ जाते हैं। उस निर्जरा को सविपाक निर्जरा कहते हैं। कर्मों को उदयकाल से पूर्व ही उदय में लाकर खिराना अविपाक निर्जरा है।

जिन परिणामों से कर्म का एकदेश क्षय होता है, उन परिणामों को भावनिर्जरा कहते हैं तथा कर्मों का झड़ जाना द्रव्यनिर्जरा है**।।३६।।**

उत्थानिकार्थ :-

अब मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं –

गाथार्थ :-

जो जो **अप्पणो** आत्मा का **परिणामो** परिणाम **सव्वस्स** सम्पूर्ण **कम्मणो** कर्मों के **खयहेदू** क्षय का हेतु है, **स** वह **हु** निश्चयतः **भावमुक्खो** भावमोक्ष

इदानीं मोक्षस्वरूपमाह–

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो।।३७।।

टीका :-

णेओ स भावमुक्खो स भावमोक्षो ज्ञेयः। परिणाममोक्षः, स कः? **जो अप्पणो हु परिणामो** आत्मनश्चारित्रावरणीयक्षयात् यः समुत्पद्यते निर्मलपरिणामः, स भावमोक्ष इति। **दव्वविमुक्खो कम्मपुहभावो** द्रव्यमोक्षस्य, पुनः कर्मभावसकाशादात्मनः पृथग्भावः शुद्धचैतन्यरूपावस्थितिरित्यर्थः।

उत्थानिका :-

इदानीं पुण्यपापस्वरूपमाह –

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च।।३८।।

है **य** और **कम्मपुहभावो** कर्मों के पृथक् होने को **दव्वविमुक्खो** द्रव्यमोक्ष **णेओ** जानना चाहिए**।।३७।।**

टीकार्थ :-

णेओ स भावमुक्खो उसे भावमोक्ष जानो अर्थात् परिणाममोक्ष जानो। वह कौन? **जो अप्पणो हु परिणामो** आत्मा के चारित्र मोहनीय के क्षय से जो निर्मल परिणाम उत्पन्न होता है, वह भावमोक्ष है। **दव्वविमुक्खो कम्मपुहभावो** पुनः कर्मभाव का आत्मा से पृथक् हो जाना अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वरूप में आत्मा की अवस्थिति द्रव्यमोक्ष है**।।३७।।**

भावार्थ :-

जिन परिणामों से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाता है, उन परिणामों को भावमोक्ष कहते हैं। सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना द्रव्य–मोक्ष है**।।३७।।**

पाठभेद :-

मुक्खो = मोक्खो णेओ = णेयो**।।३७।।**

उत्थानिकार्थ :-

अब पुण्य और पाप के स्वरूप को कहते हैं–

टीका :-

पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा पुण्यं पापं चानुभवति, **खलु** स्फुटं, के ते? **जीवाः**, कथम्भूतः सन्तः? **सुह-असुहभावजुत्ता** शुभाशुभपरिणामयुक्ताः। शुभपरिणामात्पुण्यम्। अशुभपरिणामात्पापमनुभवन्ति। पुण्यस्य कानिचित्कारणानीत्याह-**सादं सुहाउणामं गोदं** सातावेदनीयं शुभायुर्नामगोत्रमेतैर्चिह्नैर्युक्तं पुण्यम्। पापस्य कानि? **पराणि पावं च** असाताशुभायुर्नाम-गोत्राणि पापं च स्फुटम्।

गाथार्थ :-

सुह शुभ, **असुह** अशुभ, **भावजुत्ता** भावों से युक्त **जीवा** जीव **खलु** निश्चय से **पुण्णं** पुण्य **पावं** पापरूप **हवंति** होते हैं।

सादं साता वेदनीय, **सुहाउ** शुभायु, **णामं** शुभनाम, **गोदं** शुभगोत्र, **पुण्णं** पुण्य हैं **च** और **पराणि** अन्य **पावं** पाप हैं।।३८।।

टीकार्थ :-

पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा पुण्य और पाप का अनुभव करता है। **खलु** निश्चय से। पुण्य और पाप का अनुभव कौन करता है? **जीवाः** जीव। कैसे होते हुए? **सुहअसुहभावजुत्ता** शुभाशुभ परिणामों से युक्त होकर, शुभ परिणाम से पुण्य व अशुभ परिणाम से पाप का अनुभव करता है।

पुण्य के कारण कौनसे हैं? सो कहते हैं-**सादं सुहाउ णामं गोदं** साता-वेदनीय, शुभायु, शुभनाम और शुभ गोत्र इन चिह्नों से युक्त पुण्य होता है। पाप के कारण क्या हैं? **पराणि पावं च** असातावेदनीय, अशुभायु, अशुभनाम और अशुभगोत्र ये निश्चय से पाप हैं।।३८।।

भावार्थ :-

शुभ भावों से युक्त जीव पुण्यरूप होता है। अशुभ भावों से युक्त जीव पापरूप होता है। सातावेदनीय, शुभायु, शुभनाम व उच्च गोत्र ये पुण्य-प्रकृतियाँ हैं। इनसे विपरीत सम्पूर्ण कर्म पापकर्म की प्रकृतियाँ हैं।।३८।।

इस प्रकार अवचूरि टीकायुक्त दव्वसंगहो ग्रन्थ के भाषानुवाद में दूसरा अधिकार समाप्त हुआ।

ॐ
तीसरा अधिकार

उत्थानिका :-

सम्प्रति पूर्वोक्तस्य मोक्षस्य कारणमाह-

सम्मद्दंसणणाणं-चरणं मोक्खस्स कारणं हवदि।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।।३९।।

टीका :-

हवदि भवति, किं तत्? **कारणं** हेतुः कस्य? **मोक्खस्स** मोक्षस्य कारणं, **सम्मद्दंसणणाणं-चरणं** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रम्। कदा? **ववहारा** व्यवहारनयापेक्षया। **णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा** निश्चयनयापेक्षया तत्त्रियात्मको निजात्मा दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपो यदेव रत्नत्रयं स एवात्मा तदेव रत्नत्रयमित्यर्थः।

उत्थानिकार्थ :-

अब पूर्वकथित मोक्ष के कारण को कहते हैं -

गाथार्थ :-

ववहारा व्यवहारनय से **सम्मद्दंसणणाणं-चरणं** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र **मोक्खस्स** मोक्ष का **कारणं** कारण **हवदि** होता है।

णिच्छयदो निश्चयनय से **तत्तियमइओ** उन त्रितयात्मक **णिओ** निज **अप्पा** आत्मा मोक्ष का कारण है।।३९।।

टीकार्थ :-

हवदि होता है। क्या होता है? **कारणं** कारण होता है। किसका कारण होता है? **मोक्खस्स** मोक्ष का कारण होता है। **सम्मद्दंसणणाणं चरणं** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। कब? व्यवहारनय की अपेक्षा से। **णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा** निश्चयनय की अपेक्षा से। उन त्रितयात्मक निजात्मा अर्थात् दर्शनज्ञानचारित्र इन रत्नत्रयस्वरूप आत्मा है। जो रत्नत्रय है, वही आत्मा है तथा जो आत्मा है, वही रत्नत्रय है।।३९।।

उत्थानिका :-

अयमर्थं दृढयन्नाह-

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥४०॥

टीका :-

तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा तस्मात् तत्त्रियात्मको दर्शनज्ञानचारित्ररूपो भवति। हि स्फुटं मोक्षस्य हेतुरात्मा, तस्मात् कस्मात्? यस्मात्, **रयणत्तयं ण वट्टइ** रत्नत्रयं न वर्त्तते। क्व? **अण्णदवियम्मि** अन्यस्मिन् शरीरादिद्रव्ये,

भावार्थ :-

व्यवहारनय भेदग्राहक होता है। उसकी अपेक्षा रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) मोक्ष का कारण है।

शुद्धनिश्चयनय स्व-द्रव्यसापेक्ष एवं अभेदग्राही होता है। उसकी अपेक्षा से रत्नत्रयात्मक निजात्मा ही मोक्ष का कारण है॥३९॥

पाठभेद :-

मोक्खरस = मुक्खरस हवदि = जाणे॥३९॥

उत्थानिकार्थ :-

इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं-

गाथार्थ :-

रयणत्तयं रत्नत्रय **अप्पाण** आत्मा को **मुइत्तु** छोड़ कर **अण्णदवियम्हि** अन्य द्रव्यों में **ण** नहीं **वट्टइ** रहता। **तम्हा** इसीलिए **तत्तियमइओ** उन त्रितयात्मक **आदा** आत्मा **हु** ही **मोक्खस्स** मोक्ष का **कारणं** कारण **हवदि** होता है॥४०॥

टीकार्थ :-

तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा इसीलिए उन त्रितयात्मक अर्थात् दर्शनज्ञानचारित्रात्मक आत्मा निश्चय से मोक्ष का हेतु होता है। ऐसा क्यों कहते हैं? क्योंकि, **रयणत्तयं ण वट्टइ** रत्नत्रय नहीं रहता है। कहाँ नहीं रहता है? **अण्णदवियम्मि** अन्य शरीरादिक द्रव्य में।

किं कृत्वा? **अप्पाण मुइत्तु** आत्मानं मुक्त्वा, त्यक्त्वा। आत्मनि रत्नत्रयं वर्त्तते न परद्रव्ये।

उत्थानिका :-

रत्नत्रयस्वरूपमाह-

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि॥४१॥

टीका :-

सम्मत्तं सम्यक्त्वं भवति। किं तत्? **जीवादीसद्दहणं** जीवादीनां श्रद्धानरुचिः, **रूवमप्पणो तं तु** तत् सम्यक्त्वं पुनरात्मनो रूपं नान्यस्य **णाणं सम्मं खु होदि सदि**

किस प्रकार? **अप्पाण मुइत्तु** आत्मा को छोड़ कर, आत्मा का त्याग कर के रत्नत्रय परद्रव्य में नहीं रहता है॥४०॥

भावार्थ :-

रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र आत्मा के अनुजीवी गुण हैं। आत्मा के अतिरिक्त वे गुण किसी भी द्रव्य में नहीं पाए जाते। जब उन तीनों की पूर्णता आत्मा में हो जाती है, तब आत्मा मोक्ष को प्राप्त करता है। अतः निश्चयनय की अपेक्षा से त्रितयात्मक आत्मा ही मोक्ष का कारण है॥४०॥

पाठभेद :-

हवदि = होदि मोक्खरस्स = मुक्खरस्स॥४०॥

उत्थानिकार्थ :-

रत्नत्रय का स्वरूप कहते हैं -

गाथार्थ :-

जीवादीसद्दहणं जीवादिकों का श्रद्धान करना **सम्मत्तं** सम्यक्त्व है। **तं** वह **अप्पणो** आत्मा का **रूवं** रूप है। **तु** और **जम्हि** जिसके **सदि** होने पर **दुरभिणिवेसविमुक्कं** कु-अभिनिवेश से विमुक्त **सम्मं** सम्यक् **णाणं** ज्ञान **खु** नियम से **होदि** होता है॥४१॥

टीकार्थ :-

जम्हि स्वपरपरिच्छेदकं ज्ञानं नियमेन भवति यस्मिन्सम्यक्त्वे सति। किं विशिष्टं ज्ञानम्? **दुरभिणिवेसविमुक्कं** संशयविमोहविभ्रमविवर्ज्जितं दर्शने सति यज्ज्ञानमुत्पद्यते।

उत्थानिका :-

तत्कथम्भूतमित्याह-

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु।।४२।।

टीका :-

सम्मण्णाणं सम्यग्ज्ञानं भवति। किं तत्? **गहणं** ग्रहणम्। कस्य? **अप्पपरसरूवस्स** आत्मनः स्वरूपस्य परवस्तुनः स्वरूपस्य, कथम्भूतं ग्रहणम्? **संसयविमोहविब्भम-**

सम्मत्तं सम्यक्त्व होता है। क्या होता है? **जीवादिसद्दहणं** जीवादिकों की श्रद्धान अर्थात् रुचि। **रूवमप्पणो तं तु** पुनः वह सम्यक्त्व आत्मा का ही स्वरूप है, अन्य का नहीं। **णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि** सम्यक्त्व के होने पर स्व और पर का परिच्छेद करने वाला (स्व और पर को जानने वाला) ज्ञान नियम से होता है। वह ज्ञान कौनसी विशेषताओं से युक्त होता है? **दुरभिणिवेसविमुक्कं** दर्शन होने पर संशय, विमोह और विभ्रम से रहित ज्ञान होता है।।४१।।

भावार्थ :-

जीवादि सात तत्त्व, नौ पदार्थ, छह द्रव्य अथवा पाँच अस्तिकायों पर श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वरूप है। सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है।।४१।।

उत्थानिकार्थ :-

वह (सम्यग्ज्ञान) कैसा होता है? उसे कहते हैं -

गाथार्थ :-

संशय संशय **विमोह** विमोह **विब्भम** विभ्रम से **विवज्जियं** रहित **अप्पपर-सरूवस्स** स्व और पर स्वरूप का **सायार** आकारसहित **गहणं** ग्रहण करना **सम्मण्णाणं** सम्यग्ज्ञान है **तु** और वह **अणेयभेयं** अनेक प्रकार का है।।४२।।

टीकार्थ :-

विवज्जियं संशयः हरिहरादिज्ञानं प्रमाणं जैनं वा। विमोह अनध्यवसायो गच्छत्तृणस्पर्श-परिज्ञानम्। विभ्रमः शुक्तिकारजतशकलं यद्विज्ञानमिति। तद् ग्रहणं किं विशिष्टम्? **सायार-मणेयभेयं तु** साकारं सविकल्पमवग्रहेहावायधारणारूपकमनेकभेदं च।

उत्थानिका :-

मत्यादिभेदाद्दर्शनज्ञानयोः को भेद इत्याह-

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसऊण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए।।४३।।

सम्मण्णाणं सम्यग्ज्ञान होता है। वह क्या है? **गहणं** ग्रहण, किसका ग्रहण? **अप्पपरसरूवस्स** आत्मा के स्वरूप का और परवस्तु के स्वरूप का, किस प्रकार से ग्रहण? **संशयविमोहविब्भमविवज्जियं** हरिहरादिकों का ज्ञान प्रमाण है या जैनों का? ऐसा संशय। विमोह-चलते हुए जीव को तृणस्पर्श के परिज्ञान की अनध्यवसायता, विभ्रम-शुक्ति (सींप) को रजत (चाँदी) के रूप में जानना। वह ग्रहण कैसे होता है? **सायारमणेयभेयं तु** साकार अर्थात् सविकल्प तथा अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणारूप अनेक भेदों वाला है।।४२।।

भावार्थ :-

संशय : परस्पर विरुद्ध कोटियों में संस्पर्श करने वाला ज्ञान संशय है।
विमोह : अनिर्णयात्मक ज्ञान को विमोह कहते हैं।
विभ्रम : विपरीत कोटि को ग्रहण करने वाला ज्ञान विभ्रम कहलाता है।

इन तीन दोषों से रहित, स्व-द्रव्य एवं पर-द्रव्यों को जानने वाले गुण को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। सम्यग्ज्ञान वस्तु के आकार को ग्रहण करने वाला होने से सविकल्प अथवा साकार कहलाता है। उसके मति-अज्ञान आदि अनेक भेद हैं।।४२।।

उत्थानिकार्थ :-

मत्यादि के भेद से दर्शन और ज्ञान में क्या भेद है? उसे बताते हैं-

गाथार्थ :-

अट्ठे पदार्थ के **अविसेसऊण** विशेष अंश को ग्रहण किए बिना **आयारं** आकार को **णेव** नहीं **कट्टु** करके **भावाणं** पदार्थ का **जं** जो **सामण्णं** सामान्य

टीका :-

दंसणमिदि भण्णए समए तद्दर्शनमितिहेतोर्भण्यते। क्व? **समए** जिनागमे। तत्किम्? **जं सामण्णं गहणं** यत् सामान्यग्रहणं वस्तुसत्तावलोकनं करोति। केषाम्? **भावाणं** पदार्थानाम्, किं त्यक्त्वा? **अविसेसऊण अट्ठे** अविशेष्यार्थान् भेदमकृत्वा इदं कृष्णमिदं नीलमित्यादिपरिच्छित्तिम्।

अत्राह परा-ननु दर्शनं तावत्स्वभावभासकं ज्ञानं च परार्थावभासकं भिन्नानां भावानां सामान्यग्रहणमिति दर्शनस्य कथं घटते? यतस्तदवलोकने ज्ञानस्य प्रयोजनम्।

अत्र निराकरणार्थमिदमाह-**णेव कट्टुमायारं** यतो दर्शनम्, प्रथमसमये नैव कर्तुं शक्नोति, भेदमित्थम्भूतमिति, जलस्नानोत्थितपुरुषसम्मुखवस्त्ववलोकनवत्।

अतो दर्शनं भण्यते किञ्चिदन्ये तत्प्रयोजनं ज्ञानस्य न पुनः वस्तुसञ्ज्ञावलोकनम्।

गहणं ग्रहण करता है। उसे **दंसणं** दर्शन कहते हैं- **इदि** ऐसा **समए** शास्त्र में **भण्णए** कहा है।।४३।।

टीकार्थ :-

दंसणमिदि भण्णए समए वह दर्शन है-ऐसा कहा गया है। कहाँ कहा गया है? **समए** जिनागम में। वह दर्शन क्या है? **जं सामण्णं गहणं** जो सामान्य से ग्रहण करता है अर्थात् वस्तु की सत्ता का अवलोकन करता है। किनका अवलोकन करता है? **भावाणं** पदार्थों का अवलोकन करता है। किनको छोड़ कर अवलोकन करता है? **अविसेसऊण अट्ठे** अविशेषरूप से अर्थात् यह काला है, यह नीला है-इस प्रकार पदार्थ का भेद न करते हुए अवलोकन करता है।

शंका : दर्शन स्वभावभासक है और ज्ञान परार्थावभासक है। भिन्न पदार्थों के सामान्य ग्रहणरूप लक्षण दर्शन में कैसे घटित होता है? क्योंकि परपदार्थों का अवलोकन करना ज्ञान का कार्य है।

समाधान : अब यहाँ निराकरण करने के लिए कहते हैं-**णेव कट्टुमायारं** जो दर्शन है, वह प्रथम समय में **यह ऐसा है** इस प्रकार का भेद नहीं करता। जैसे-जलस्नान करके खड़े हुए पुरुष एकाएक सम्मुख में उपस्थित वस्तु का अवलोकन करने पर भी भेद नही कर पाते हैं।

इसीलिए दर्शन कहा है।

तस्मात्स्वपरावभासकं दर्शनं किन्तु निर्विकल्पम्। ज्ञानं पुनः स्वपरावभासकं यतः अवग्रहेहावायधारणाग्रे समुत्पद्यन्ते।

इसका एक अन्य प्रयोजन भी है कि वस्तु की संज्ञा के अवलोकन को ज्ञान नहीं कहते हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि दर्शन भी स्व-परावभासी होता है, किन्तु वह निर्विकल्प होता है और ज्ञान स्व-परावभासी होता है। दर्शन के बाद अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणारूप ज्ञान उत्पन्न होता है।।४३।।

भावार्थ :-

जो गुण पदार्थ के विशेष अंश को व आकार को ग्रहण नहीं करता है, उस सामान्यग्राही गुण को दर्शन कहते हैं।

टीकाकार ने टीका में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया है। उस प्रश्न का मुख्य आधार सम्भवतः सिद्धान्त ग्रन्थों में आगत चर्चाओं का एक अंश है।

जयधवला में दर्शनोपयोग की चर्चा विशेषरूप से की गई है। आचार्यश्री वीरसेन जी महाराज के अनुसार -

पमाणदो पुधभूदं कम्ममायारो तं जम्मि णत्थि सो उवजोगो अणायारो णाम, दंसणुवजोगो त्ति भणिदं होदि।

(जयधवला = पु. १ पृ. ३०२)

अर्थात् :- प्रमाण से पृथग्भूत कर्म को आकार कहते हैं। अर्थात् प्रमाण में अपने से भिन्न बहिर्भूत जो विषय प्रतिभासमान होता है, वह आकार है। वह आकार जिस उपयोग में नहीं पाया जाता है, वह उपयोग अनाकार अर्थात् दर्शनोपयोग कहा जाता है।

आगे भी वे लिखते हैं-

आयारो कम्मकारयं सयलत्थसत्थादो पुध काऊण बुद्धिगोयरमुवणीयं, तेण आयारेण सह वट्टमाणं सायारं। तव्विवरीयमणायारं।

(जयधवला = पु. १ पृ. ३०८)

अर्थात् :- सम्पूर्ण पदार्थों के समुदाय से अलग होकर बुद्धि के विषयभाव को प्राप्त हुआ कर्मकारक आकार कहलाता है। जो इससे विपरीत है, उसे अनाकार कहते हैं।

दर्शनोपयोग का विषय अन्तरंग पदार्थ है, क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर वह अनाकार सिद्ध नहीं हो पाएगा।।४३।।

उत्थानिका :-

इदानीं दर्शनपूर्वकं ज्ञानमाह-

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि।।४४।।

टीका :-

दंसणपुव्वं णाणं दर्शनपूर्वकं विषयविषयिणोः सन्निपातो दर्शनं तदनन्तरमर्थग्रहणं किञ्चिदिति ज्ञानं यथा बीजाङ्कुरौ। केषाम्? **छदमत्थाणं** छद्मस्थानां किञ्चिद्दर्शन-ज्ञानावरणीययुक्तानाम्, तेषां च **ण दोण्णि उवओगा जुगवं जम्हा** दर्शनज्ञानोपयोगद्वयं युगपद् यस्मान्न तेषां अतो दर्शनपूर्वकं ज्ञानं बीजाङ्कुरवत्।

केवलिणाहे तु केवलज्ञानयुक्ते पुनः **जुगवं तु ते दो वि** युगपत्तौ द्वौ भास्करप्रकाश-प्रतापवत्।

उत्थानिकार्थ :-

अब दर्शनपूर्वक ज्ञान को कहते हैं -

गाथार्थ :-

छदमत्थाणं छद्मस्थ जीवों को **दंसणपुव्वं** दर्शनपूर्वक **णाणं** ज्ञान होता है, **जम्हा** क्योंकि **दोण्णि** दोनों **उवओगा** उपयोग **जुगवं** एक साथ **ण** नहीं होते **तु** परन्तु **केवलिणाहे** केवलिनाथ में **ते** वे **दो वि** दोनों भी (उपयोग) **जुगवं** एक साथ होते हैं।।४४।।

टीकार्थ :-

दंसणपुव्वं णाणं दर्शनपूर्वक, विषय और विषयी का सन्निपात दर्शन है, उसके बाद पदार्थ को ग्रहण करना ज्ञान है। जैसे बीज और अंकुर। किन जीवों को? **छदमत्थाणं** छद्मस्थ जीवों को, दर्शनावरणीय एवं ज्ञानावरणीय कर्म से युक्त जीवों को, उन जीवों को **ण दोण्णि उवओगा जुगवं जम्हा** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनों युगपत् नहीं होते। अतः बीजपूर्वक अंकुर के समान दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है।

केवलिणाहे तु पुनः केवलज्ञान से युक्त जीवों को **जुगवं तु ते दो वि** सूर्य के प्रकाश एवं प्रताप के समान दोनों युगपत् होते हैं।।४४।।

भावार्थ :-

उत्थानिका :-

इदानीं चारित्रमाह-

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ति य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं।।४५।।

टीका :-

जाण चारित्तं जानीहि चारित्रम्। किं तत्? **असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य** अशुभात्पापास्रवरूपात् निवृत्तिः शुभपुण्यास्रवद्वाररूपेण प्रवृत्तिश्च।

छद्म अर्थात् आवरण। ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन दोनों को छद्म कहते हैं। स्थ का अर्थ है-निवासी। जो छद्म में रहते हैं, वे छद्मस्थ हैं। अल्पज्ञानी जीवों को छद्मस्थ कहते हैं। जैसे बीजपूर्वक अंकुर होता है, उसी प्रकार छद्मस्थ जीवों को दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानोपयोग होता है।

विषय और विषयी के मिलन को जो ग्रहण करता है, उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। दर्शन के पश्चात् वस्तुस्वरूप का बोध होता है। उसको ज्ञानोपयोग कहते हैं। छद्मस्थों को दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते।

सूर्य का प्रकाश एवं प्रताप एक साथ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार केवलज्ञानी में दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं।।४४।।

उत्थानिकार्थ :-

अब चारित्र को कहते हैं -

गाथार्थ :-

असुहादो अशुभ से **विणिवित्ती** निवृत्ति **य** और **सुहे** शुभ में **पवित्ति** प्रवृत्ति **जिणभणियं** जिनेन्द्रकथित **चारित्तं** चारित्र है-ऐसा **ववहारणया** व्यवहार नय से **जाण** जानो **दु** और वह **वदसमिदिगुत्तिरूवं** व्र त, समिति, गुप्तिरूप है।।४५।।

टीकार्थ :-

जाण चारित्तं चारित्र जानो। वह चारित्र क्या है? **असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ति य** अशुभ से, पापास्रव रूप से निवृत्ति और शुभ पुण्यास्रव के द्वार के रूप से प्रवृत्ति है।

यह **वदसमिदिगुत्तिरूवं** व्रत, समिति और गुप्तिरूप है। यह चारित्र किस

एतद् **वदसमिदिगुत्तिरूवं** व्रतसमितिगुप्तिरूपम्। कस्मात्? **ववहारणया दु** व्यवहारनयापेक्षया तु, किं विशिष्टम्? **जिणभणियं** वीतरागप्रतिपादितम्, भावचारित्रं पुनरहं ब्रवीमि परिणामः।

उत्थानिका :-

इदानीं सम्यक् चारित्रमाह-

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं सम्मं परमचारित्तं।।४६।।

टीका :-

अपेक्षा से है? **ववहारणया दु** व्यवहारनय की अपेक्षा से है। उस चारित्र की क्या विशेषता है? **जिणभणियं** वीतरागी ने प्रतिपादित किया है। पुनः भावचारित्र (परिणाम) को मैं कहूँगा।।४५।।

भावार्थ :-

जो क्रिया पाप से बचाती है एवं शुभ में रमाती है, वह चारित्र है-ऐसा व्यवहारनय से जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

पाँच पापों से विरति को व्रत कहते हैं। वे पाँच हैं।

सम्यक् रूप से क्रिया करने को समिति कहते हैं। वे भी पाँच हैं।

सम्यक् प्रकार से योगों का निग्रह करने को गुप्ति कहते हैं। अथवा, योगों का गोपन करने को (छिपाने को) गुप्ति कहते हैं। वे तीन हैं।

इस प्रकार व्यवहार चारित्र तेरह प्रकार का है।।४५।।

उत्थानिकार्थ :-

अब सम्यक् चारित्र को कहते हैं-

गाथार्थ :-

भवकारणप्पणासट्ठं भवकारणों का विनाश करने के लिए **णाणिस्स** ज्ञानी का **जं** जो **बहिरब्भंतरकिरिया रोहो** बाह्याभ्यंतर क्रियाओं को रोकना है, **तं** वह **जिणुत्तं** जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कथित **सम्मं** सम्यक् **परमचारित्तं** श्रेष्ठ चारित्र है।।४६।।

टीकार्थ :-

तं सम्मं परमचारित्तं तत्सम्यक् परमचारित्रं भवति। किं विशिष्टम्? **जिणुत्तं** जिनैः प्रतिपादितं चारित्रम्। कस्य? **णाणिस्स** ज्ञानिनो यथाख्यातमित्यर्थः। तत् किम्? **जं बहिरब्भंतरकिरियारोहो** यद् बाह्याभ्यन्तरक्रियारोधः। तत्र बाह्यो व्रतचरणादयः, आभ्यन्तरे व्रती शीलवानित्यादयः। किमर्थं क्रियारोधः? **भवकारणप्पणासट्ठं** संसारोत्पत्ति-विनाशार्थम्।

गाथा-

णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो।
जोण्हा वच्छगओ सो जोई णत्थि त्ति संदेहो।।

(णाणसार)

इत्यर्थः।

तं सम्मं परमचारित्तं वह सम्यक् परम चारित्र होता है। उस चारित्र की क्या विशेषता है? **जिणुत्तं** जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ चारित्र है। किस का चारित्र है? **णाणिस्स** ज्ञानी का यथाख्यात चारित्र है। यह अर्थ है। वह क्या? **जं बहिरब्भंतरकिरियारोहो** जो बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया को रोकना है। उनमें व्रताचरण आदि बाह्यक्रियाएँ है तथा व्रती का स्वभाववान (शीलवान) होना आभ्यन्तर क्रिया है। क्रिया का निरोध क्यों किया जाता है? **भवकारण-प्पणासट्ठं** संसार की उत्पत्ति का विनाश करने के लिए।

गाथा-

जिसने श्वासों को जीत लिया है, जिसके नेत्र निष्पन्द हैं, जो सम्पूर्ण व्यापारों से मुक्त है, जो पर के वश नहीं है वह योगी है-इसमें कोई सन्देह नहीं है।

ऐसा अर्थ है।।४६।।

भावार्थ :-

बाह्यक्रिया एवं आभ्यन्तर क्रियाओं के रुक जाने पर आत्मा में जो स्थिरता प्राप्त होती है, उसे परम सम्यक् चारित्र अथवा यथाख्यात चारित्र कहा जाता है। वही मोक्ष का कारण है। टीकाकार ने बाह्यक्रिया और आभ्यन्तरक्रिया का अर्थ गलत किया है। पाँच पाप बाह्यक्रिया है और रागादिभाव आभ्यन्तरक्रिया है।।४६।।

पाठभेद :-

तं सम्मं परमचारित्तं = तं परमं सम्मचारित्तं।।४६।।

उत्थानिका :-

इदानीं द्विविधमपि चारित्रं मोक्षकारणं भवतीत्याह-

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे झाऊण जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह।।४७।।

टीका :-

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह तस्मात्कारणात्प्रयत्नचेतसः सन्तो यूयं ध्यानं समभ्यसत, तस्मात् कस्मात्? यस्मात् **पाउणदि** प्राप्नोति, कोऽसौ? **मुणी** मुनिः कथम्? **णियमा** निश्चयेन, क्व प्राप्नोति? **झाणे** ध्याने स्थित इत्यर्थः। किं प्राप्नोति? **दुविहं पि** द्विविधमपि चारित्रम्। कथम्भूतम्? **मोक्खहेउं** मोक्षकारणमिति।

उत्थानिकार्थ :-

अब दोनों भी चारित्र मोक्ष के कारण होते हैं, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

जं जो **मुणी** मुनिगण **दुविहं पि** दोनों ही **मोक्खहेउं** मोक्षहेतुओं को **णियमा** नियम से **झाणे** ध्यान में **झाऊण** ध्या लेते हैं। **तम्हा** इसीलिए **पयत्तचित्ता** प्रयत्नचित्त से **झाणं** ध्यान का **जूयं** तुम सब **समब्भसह** अभ्यास करो।।४७।।

टीकार्थ :-

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह उस कारण से प्रयत्नचित्त होकर तुम सब ध्यान का अभ्यास करो। अभ्यास क्यों करें? क्योंकि **पाउणदि** प्राप्त करता है, कौन प्राप्त करता है? **मुणी** मुनि, किस प्रकार? **णियमा** निश्चय से, कहाँ प्राप्त करता है? **झाणे** ध्यान में स्थित होकर प्राप्त करता है। यह अर्थ है। क्या प्राप्त करता है? **दुविहं पि** दोनों ही प्रकार का चारित्र, वह कैसा है? **मोक्खहेउं** मोक्ष का कारण है।।४७।।

भावार्थ :-

व्यवहार रत्नत्रय एवं निश्चय रत्नत्रय की सिद्धि ध्यान के द्वारा ही होती है। अतः हे भव्यो ! यदि तुम मुमुक्षु हो अर्थात् मोक्ष के इच्छुक हो तो सावधान होकर ध्यान का अभ्यास करो।।४७।।

पाठभेद :-

मोक्खहेउं = मुक्खहेउं झाणे झाऊण = झाणे पाउणादि।।४७।।

उत्थानिका :-

इदानीं आचार्यः शिष्यान् प्रति शिक्षामाह-

मा मुज्झह मा रज्जह मा रूसह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए।।४८।।

टीका :-

अहो शिष्याः! **थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए** स्थिरमिच्छत यदि चित्तं, किमर्थम्? विचित्रध्यानप्रसिध्यर्थम्। तदा **मा मुज्झह** मा मोहं गच्छत, **मा रज्जह** मा रागं कुरुत, **मा रूसह** मा रोषं कुरुत। केषु विषयेषु? **इट्ठणिट्ठ अत्थेसु** इष्टानिष्टार्थेषु।

उत्थानिकार्थ :-

अब आचार्य शिष्यों को शिक्षा देते हुए कहते हैं-

गाथार्थ :-

विचित्तझाणप्पसिद्धीए विचित्र ध्यान की प्रसिद्धि के लिए **जइ** यदि **चित्तं** चित्त को **थिरं** स्थिर करने की **इच्छह** इच्छा करते हो तो **इट्ठणिट्ठअत्थेसु** इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में **मा मुज्झह** मोह मत करो, **मा रज्जह** राग मत करो, **मा रूसह** रोष मत करो।।४८।।

टीकार्थ :-

अहो शिष्यो! **थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए** चित्त को स्थिर करना चाहते हो। किसलिए? विचित्र ध्यान की सिद्धि के लिए तब **मा मुज्झह** मोह मत करो। **मा रज्झह** राग मत करो। **मा रूसह** रोष मत करो। किन विषयों में? **इट्ठणिट्ठअत्थेसु** इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में।।४८।।

भावार्थ :-

मन की स्थिरता के लिए आवश्यक है कि चंचलता के कारणभूत संकल्प-विकल्पों में मन को लीन नहीं करें। संकल्प और विकल्पों से बचने के लिए इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में राग-मोह एवं रोष नहीं करना चाहिए। मन के स्थिर हाने पर ही ध्यान की सिद्धि होती है।।४८।।

पाठभेद :-

मा रूसह = मा दुसह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु = इट्ठणिट्ठ अट्ठेसु।।४८।।

उत्थानिका :-

साम्प्रतं जपध्यानयोः क्रममाह-

पणतीससोलछप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण।।४९।।

टीका :-

भो शिष्याः! **जवह झाएह** जपत ध्यायत च यूयम्।

कानि अक्षराणि? केषां सम्बन्धीनि? **परमेट्ठिवाचयाणं** परमेष्ठिवाचकानाम्। केन प्रकारेण इत्याह-**पणतीससोलछप्पण चदुदुगमेगं च** पञ्चत्रिंशत्-

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं।।

षोडश-अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसाहू। षट्-अरिहंतसिद्ध।

उत्थानिकार्थ :-

अब जप और ध्यान के क्रम को कहते हैं-

गाथार्थ :-

परमेट्ठिवाचयाणं परमेष्ठीवाचक **पणतीस** पैंतीस, **सोल** सोलह, **छ** छह, **पण** पाँच, **चउ** चार, **दुगं** दो **च** और **एगं** एक अक्षरी मन्त्र का **जवह** जप करो, **झाएह** ध्यान करो **च** और **अण्णं** अन्य मन्त्रों का **गुरूवएसेण** गुरु के उपदेश से (जप करो और ध्यान करो)।।**४९।।**

टीकार्थ :-

भो शिष्यो! **जवह झाएह** आप जप करो और ध्यान करो। किन अक्षरों का? किनसे सम्बन्धित? **परमेट्ठिवाचयाणं** परमेष्ठीवाचक। किस प्रकार से? उसे कहते हैं-**पणतीससोलछप्पण चदुदुगमेगं च**-पैंतीस,

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

सोलह-अरिहंतसिद्धआयरियउवज्झायसाहू। **छह**-अरहंतसिद्ध। **पाँच**-असिआउसा। **चार**-अरिहंत। **दो**-सिद्ध। **एक**-हं। **अण्णं च गुरूवएसेण** अन्य मन्त्रों का जप गुरु के उपदेश से करना चाहिए।

पञ्च-असिआउसा। चत्वारः-अरिहंत। द्वय-सिद्धा। एकं-हं। **अण्णं च गुरूवएसेण** अन्यं च गुरूपदेशेन। सिद्धचक्रे उदिताम्।

उत्थानिका :-

इदानीं कः कथम्भूतो ध्येय इत्याह-

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।।५०।।

टीका :-

विचिंतिज्जो विशेषेण चिन्तनीयो भवति, भवतां भो शिष्याः ! कोऽसौ? **अप्पा** स्वात्मा, कथम्भूतः? **अरिहो** अर्हत्स्वरूपः। पुनः कथम्भूतः? **सुद्धो** शुद्धात्मस्वरूपो द्रव्यभावकर्मरहितः। पुनः किं विशिष्टः? **सुहदेहत्थो** सप्तधातुरहितः। पुनः किं

सिद्धचक्र में कथित जप भी करना चाहिए।।**४९।।**

भावार्थ :-

पदस्थध्यान धर्म्यध्यान का एक भेद है। इस ध्यान का ध्याता मन्त्रों के पदों का ध्यान करता है। पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो अथवा एक अक्षर का मन्त्र ध्याता के द्वारा ध्याया जाता है।

मन्त्र का विशेष वर्णन टीका में किया जा चुका है। इन मन्त्रों के अतिरिक्त मन्त्रों का जप या ध्यान परम गुरुदेव के उपदेश से ही करना चाहिए।।**४९।।**

पाठभेद :-

जवह झाएह = जवह ज्झाएह।।**४९।।**

उत्थानिकार्थ :-

अब कौन, कैसा ध्येय है? उसे कहते हैं-

गाथार्थ :-

णट्ठचदुघाइकम्मो जिन्होंने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिए हैं **दंसण-सुहणाणवीरियमईओ** जो दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्यमय हैं, **सुहदेहत्थो** जो शुभ देह में स्थित हैं, वे **सुद्धो** शुद्ध **अप्पा** आत्मा **अरिहो** अरिहन्त हैं। वे **विचिंतिज्जो** ध्यान करने योग्य हैं।।**५०।।**

टीकार्थ :-

टीका :-

झाएह ध्यायत यूयम्। कोऽसौ? **अप्पा** आत्मा, किं विशिष्टः? **सिद्धो** अशरीरः, पुनःकिं विशिष्टः? **लोयाग्गसिहरत्थो** लोकाग्रशिखरस्थितः, पुनः किं विशिष्टः? **णट्ठट्ठकम्मदेहो** नष्टाष्टकर्मस्वरूप इत्थम्भूतः। पुनः कथम्भूतः? **लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा** लोकान्तर्वर्त्तिसमस्तवस्तुज्ञायको दृष्टा च युगपत्। कीदृगाकारो ध्येयः? **पुरिसायारो** नियतसिद्धपुरुषप्रतिमानराकृतिरूपः।

उत्थानिका :-

इदानीमाचार्यो ध्येय इत्याह-

टीकार्थ :-

झाएह आप ध्यान करो। वे कौन हैं? **अप्पा** आत्मा, कैसे हैं? **सिद्धो** शरीर से रहित, पुनः, वे कैसे हैं? **लोयाग्गसिहरत्थो** लोकाग्रशिखर पर स्थित हैं। और कैसे हैं? **णट्ठट्ठकम्मेदेहो** आठ कर्मों को नष्ट किया है जिन्होंने, ऐसे स्वरूप वाले हैं। पुनः, वे कैसे हैं? **लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा** लोक में स्थित समस्त वस्तुओं के ज्ञाता एवं दृष्टा हैं। कैसा आकार ध्येय है? **पुरिसायारो** वे सिद्ध नित्य ही पुरुष के आकार के समान आकार को धारण करणे वाले हैं।।७१।।

भावार्थ :-

जिन्होंने आठ कर्मों को नष्ट कर दिया है, जो अशरीरी हैं, जो लोकाग्र-शिखर पर विराजते हैं, जो लोकालोक को युगपद् जानते व देखते हैं, जो पुरुषाकार को धारण करने वाले हैं, वे सिद्धप्रभु ध्यान करने वाले ध्याता के लिए उत्तम ध्येय हैं।।७१।।

विशेष :-

गाथा में **लोयसिहरत्थो** लिखा हुआ है, परन्तु टीकाकार ने **लोयाग्ग-सिहरत्थो** लिखा है।

लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा की टीका में केवल लोक का वर्णन किया है। सिद्धप्रभु अलोकाकाशवर्ती आकाश को भी जानते हैं।।७१।।

उत्थानिकार्थ :-

अब आचार्य ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं-

विशिष्टः? **णट्ठचदुघाइकम्मो** नष्ट चतुर्घातिकर्माः, पुनः किं विशिष्टः? **दंसणसुहणाण-वीरियमईओ** अनन्तदर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः, समवसरणविभूतियुक्तो ह्यात्मा ध्येय इत्यर्थः।

उत्थानिका :-

इदानीं सिद्धो ध्येय इत्याह -

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो।।५१।।

विचिंतिज्जो-भो शिष्य ! आपके द्वारा विशेषरूप से चिन्तनीय हैं। कौन चिन्तनीय हैं? **अप्पा** स्वात्मा। किस प्रकार चिन्तनीय है? **अरिहो** अर्हत्स्वरूप। पुनः वे कैसे हैं? **सुद्धो** द्रव्य और भावकर्म से रहित शुद्धात्मस्वरूप हैं। पुनः, उनमें क्या विशेषता है? **सुहदेहत्थो** सात धातुओं से रहित हैं। पुनः, उनमें क्या विशेषता है? **णट्ठचदुघाइकम्मो** उन्होंने चार घातिया कर्मों को नष्ट किया है। पुनः, उनमें क्या विशेषता है? **दंसणसुहणाणवीरियमईओ** वे अनन्तदर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्यमय हैं। समवसरण की विभूति से युक्त आत्मा ध्येय है। यह इसका अर्थ है।।७०।।

भावार्थ :-

जिन्होने चार घातिया कर्मों का विनाश किया है, जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अनन्तचतुष्टय से सहित हैं, जो द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित हैं, जो तीन लोक के सौ इन्द्रों द्वारा अभिवन्दित हैं और जो सात धातुओं से रहित शरीर को धारण करने वाले हैं-ऐसे अरिहन्त परमात्मा का ध्यान भव्य जीवों को करना चाहिए।।७०।।

उत्थानिकार्थ :-

अब सिद्ध ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ :-

णट्ठट्ठकम्मदेहो जिन्होंने नष्ट कर दिए हैं, आठ कर्म एवं देह **लोयालोयस्स** लोक और आलोक का **जाणओ** ज्ञायक, **दट्ठा** दर्शक, **पुरिसायारो** पुरुषाकार, **लोयसिहरत्थो** लोकाग्रशिखर पर स्थित **अप्पा** आत्मा **सिद्धो** सिद्ध हैं। **झाएह** तुम उनका ध्यान करो।।७१।।

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ।।५२।।

टीका :-

अप्पा इति अध्याहार्यः। **झेओ** ध्यातव्याः। कोऽसौ? **अप्पा** स्वात्मा। कथम्भूतः? किमिति भणित्वा, **सो आइरिओ मुणी** स आचार्यो मुनिरहं एकः, **जो अप्पं परं च जुंजइ** य आत्मा परं च सम्बन्धं करोति। क्व? **वीरियचारित्तवरतवायारे** वीर्याचारचारित्राचारवरतपश्चरणाचारो, किंवशिष्टः? **दंसणणाणपहाणे** दर्शनज्ञानप्रधाने, यत्र तस्मिन् दर्शनज्ञानप्रधाने दर्शनपूर्वकेषु सिद्धिरिति भावः।

उत्थानिका :-

गाथार्थ :-

जो जो **मुणी** मुनि **दंसणणाणपहाणे** दर्शन और ज्ञान की प्रधानतासहित **वीरियचारित्तवरतवायारे** वीर्य, चारित्र तथा उत्तम तपाचार में **अप्पं** स्वयं को **च** और **परं** पर को **जुंजइ** जोड़ते हैं, **सो** वे **आइरिओ** आचार्य **झेओ** ध्येय हैं।।५२।।

टीकार्थ :-

अप्पा आत्मा (इस शब्द का अध्याहार कर लेना चाहिए।) **झेओ** ध्यान करना चाहिए। किसका? **अप्पा** स्वात्मा, किस प्रकार? क्या कह कर **सो आइरिओ मुणी** एक वह आचार्य मुनि मैं हूँ, जो **अप्पं परं च जंजुइ** आत्मा का तथा अन्यों का भी सम्बन्ध करता है। कहाँ? **वीरियचारित्त-वरतवायारे** वीर्याचार, चारित्राचार, श्रेष्ठ तपश्चरणाचार। किस प्रकार? **दंसणणाणपहाणे** दर्शन और ज्ञानाचार से युक्त, ये दोनों प्रधान आचार हैं, क्योंकि दर्शनाचारपूर्वक ही शेष आचार होते हैं।।५२।।

भावार्थ :-

दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार ये पाँच आचार हैं। इनका जो स्वयं पालन करते हैं एवं शिष्यों से पालन करवाते हैं-वे आचार्य हैं।।५२।।

उत्थानिकार्थ :-

इदानीमुपाध्यायो ध्येय इत्याह-

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स।।५३।।

टीका :-

झेओ इत्यध्याहार्य। **सो उवज्झाओ अप्पा** स उपाध्यायः स्वात्मा ध्येयः। किं विशिष्टः? **जदिवरवरसहो** यतिवरवृषभः प्रधानः, **णमो तस्स** नमस्कारोऽस्तु तस्मै, सः कः? **जो रयणत्तयजुत्तो** यो रत्नत्रययुक्तः, पुनः किं विशिष्टः? **णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो** नित्यं धर्मोपदेशने निरतः।

अब उपाध्याय ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ :-

रयणत्तयजुत्तो रत्नत्रय से संयुक्त **जो** जो **अप्पा** आत्मा **णिच्चं** हमेशा **धम्मोवएसणे** धर्मोपदेश देने में **णिरदो** निरत हैं। **जदिवरवसहो** यतियों में प्रधान, **सो** वे **उवज्झाओ** उपाध्याय परमेष्ठी हैं। **तस्स** उनको **णमो** नमस्कार हो।।५३।।

टीकार्थ :-

झेओ ऐसा अध्याहार कर लेना चाहिए। **सो उवज्झाओ अप्पा** वह उपाध्याय स्वात्मा का ध्येय है। वे कैसे हैं? **जदिवरवरसहो** यतियों में वृषभ अर्थात् प्रधान हैं, **णमो तस्स** उनको मैं नमस्कार करता हूँ। वे कौन हैं? **जो रयणत्तयजुत्तो** जो रत्नत्रय से युक्त हैं, और कैसे हैं? **णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो** हमेशा धर्म का उपदेश करने में रत हैं।।५३।।

भावार्थ :-

जो अंगप्रविष्ठ एवं अंगबाह्यरूप श्रुतज्ञान का निरन्तर पठन करते हैं व भव्य जीवों को पाठन कराते हैं, वे रत्नत्रय से संयुक्त-मुनियों में प्रधान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। भव्य जीवों के लिए वे उपाध्याय परमेष्ठी ध्यान का ध्येय है।।५३।।

पाठभेद :-

धम्मोवएसणे = धम्मोवदेसणे।।५३।।

उत्थानिका :-

साधुर्ध्येय इत्याह-

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्च सुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स।।५४।।

टीका :-

झेओ अप्पा इत्यध्याहार्यः। **झेओ** ध्यातव्यः। कोऽसौ? स्वात्मा। किं स्वरूपो भणित्वा? **साहू स मुणी** साधुः स मुनिः **णमो तस्स** नमस्कारोऽस्तु तस्मै, स कः? **जो हु साधयदि** यः स्फुटं साधयति, किम्? **चारित्तं** चारित्रम्, कथम्भूतम्? **सुद्धं** यथाख्यातम्, कदा? **णिच्च** सर्वकालम्। पुनः कथम्भूतम्? **दंसणणाणसमग्गं** दर्शनज्ञानसंयुक्तम्, पुनरपि कथम्भूतम्? **मग्गं** मार्गम्, कस्य? **मोक्खस्स** मोक्षस्य।

उत्थानिकार्थ :-

साधु ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ :-

जो जो **मुणी** मुनि **हु** निश्चयतः **दंसणणाणसमग्गं** दर्शन और ज्ञान से युक्त **मोक्खस्स** मोक्ष के **मग्गं** मार्गस्वरूप **चारित्तं** चारित्र को **णिच्चा** सदा **सुद्धं** शुद्धता से **साधयदि** साधते हैं। **स** वे **साहू** साधु हैं, **तस्स** उन्हें **णमो** नमस्कार हो।।५४।।

टीकार्थ :-

झेओ अप्पा ऐसा अध्याहार कर लेना चाहिए। **झेओ** ध्यान करना चाहिए। ध्यान कौन करें? आत्मा। किसका ध्यान करें? उसे कहते हैं। **साहू स मुणी** साधु, वह मुनि, **णमो तस्स** उनको मेरा नमस्कार हो।

वह कौन है? **जो हु साधयदि** जो निश्चय से साधता है, किसे साधता है? **चारित्तं** चारित्र को। किस प्रकार के चारित्र को? **सुद्धं** यथाख्यातचारित्र को, कब? **णिच्च** हमेशा। पुनः, वे कैसे हैं? **दंसणणाणसमग्गं** दर्शन और ज्ञान से संयुक्त हैं। और, वे कैसे हैं? **मग्गं** मार्ग हैं। वे किसके मार्ग हैं? **मोक्खस्स** मोक्ष के।।५४।।

भावार्थ :-

उत्थानिका :-

शुद्धनिश्चयनयमाश्रित्य कीदृशं ध्यानं इत्याह-

जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूण य एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छया झाणं।।५५।।

टीका :-

तदाहु तं तस्स णिच्छया झाणं तस्मिन् प्रस्तावे हि स्फुटम्, तत्प्रसिद्धिमसहायम्, **तस्स** तस्य साधोः, **णिच्छया झाणं** शुद्धनिश्चयनयेन ध्यानं तदा, **जदा साहू हवे** यदा साधुर्भवन्, कथम्भूतः? **णिरीहवित्ती** बाह्याभ्यन्तरप्रसररहितः।

जो मुनिराज निश्चय से दर्शन और ज्ञान से संयुक्त हैं, जो मोक्षमार्ग में उपादेयभूत चारित्र की नित्य शुद्ध साधना करते हैं, वे साधु परमेष्ठी हैं। उन्हें हम नमस्कार करते हैं।।५४।।

विशेष :-

टीका में जो **भणित्वा** पाठ है, हमारे दृष्टि में वह अशुद्ध है। उस स्थान पर **भणितम्** होना चाहिए।।५४।।

उत्थानिकार्थ :-

शुद्धनिश्चयनय के आश्रय से ध्यान किस प्रकार हो सकता है? उसे कहते हैं -

गाथार्थ :-

जदा जब **साहु** साधु **एयत्तं** एकाग्रता को **लद्धूण य** प्राप्त करके **जं** जिस **किंचि वि** किसी भी ध्यान करने योग्य वस्तु का **चिंतंतो** विचार करता हुआ **णिरीहवित्ती** निस्पृह होता है, **तदा** तब **हु** निश्चयतः **तं** वह **तस्स** उस का **णिच्छया** निश्चय **झाणं** ध्यान **हवे** होता है।।५५।।

टीकार्थ :-

तदा हु तं तस्स णिच्छया झाणं उस प्रस्ताव में, **हि**-निश्चय से, वह प्रसिद्ध और असहाय **तस्स** उस साधु के **णिच्छया झाणं** शुद्ध निश्चयनय से तब ध्यान होता है, **जदा साहू हवे** जब साधु होता है। कैसा होता है? **णिरीहवित्ती** बाह्याभ्यन्तर विस्तार (इच्छा) से रहित।

णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणोमुक्कसयलवावारो इत्यर्थः। किं कुर्वन्, **जं किंचि वि चिंतंतो** यत्किञ्चिद्द्रव्यरूपं वा वस्तुचिन्तयन् ध्यायन्, किं कृत्वा? **लद्धूण य एयत्तं** लब्ध्वा च किमेकत्वमयोगित्वम्।

उत्थानिका :-

इदानीं ग्रन्थकारो ध्यानस्वरूपमुक्त्वा शिक्षाद्वारेण ध्यानमाह-

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवइ झाणं।।५६।।

जिसने श्वासों को जीत लिया है, जिसके नेत्र स्पन्दरहित हो गए हैं और जो सम्पूर्ण व्यापार से रहित हो चुका है।

यह अर्थ है।

क्या करता हुआ? **जं किंचि वि चिंतंतो** जो कुछ द्रव्य के रूप का अथवा वस्तु का चिन्तन करके, ध्यान करके **लद्धूण य एयत्तं** प्राप्त करके, किसको? एकत्व को, अयोगी अवस्था को।।**५५**।।

भावार्थ :-

जब साधु निस्पृहवृत्ति वाले होकर एकाग्रता से ध्यान करने योग्य पदार्थ का चिन्तन करते हैं, उस समय उस साधु को निश्चय से ध्यान की सिद्धि हो जाती है।।**५५**।।

पाठभेद :-

णिच्छया = णिच्छयं।।**५५**।।

उत्थानिकार्थ :-

ग्रन्थकार ध्यान के स्वरूप का कथन करके अब शिक्षा के माध्यम से ध्यान का कथन करते हैं -

गाथार्थ :-

किं चि कुछ भी **मा चिट्ठह** चेष्टा मत करो, **मा जंपह** बोलो मत, **मा चिंतह** चिन्तन मत करो, **जेण** जिससे **अप्पा** आत्मा **थिरो** स्थिर **होइ** होता है। **अप्पा** आत्मा **अप्पम्मि** आत्मा में **रओ** रममाण होता है। **इणमेव** यही **परं** परं **झाणं** ध्यान **हवइ** होता है।।**५६**।।

टीका :-

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि अन्यत्किञ्चिन्मा चेष्टत यूयम्, मा जल्पत, मा चिन्तयत। तर्हि किं कुर्म? तत्किं चेष्टत? तत्किं चिन्तयत? **जेण होइ थिरो अप्पा अप्पम्मि रओ** येन चेष्टितजल्पितचिन्तनेन कृत्वा भवति स्थिरो ह्यात्मा आत्मनिरतः। उक्तं च-

तद् ब्रूयात् तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं, त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।
(समाधितन्त्र = ५३)

इणमेव परं हवइ झाणं यस्मादेतदेव चेष्टितादिकमेव ध्यानं भवति।

उत्थानिका :-

महात्मनामिदं, रत्नत्रयात्मका भवतां भव्या इत्याह-

टीकार्थ :-

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि आप अन्य कोई चेष्टाएँ मत करो, मत बोलो, चिन्तन मत करो। तो फिर क्या करें? कौनसी चेष्टा करें? (क्या बोलें?) क्या चिन्तन करें? **जेण होइ थिरो अप्पा अप्पम्मि रओ** चिन्तन करने से आत्मा आत्मा में निरत होकर स्थिर होता है।

कहा है -

उसी का कथन करे, उसी के विषय में पूछे, उसी की इच्छा करे, उसी रूप हो जावे, जिससे अविद्यामय रूप से छूट कर विद्यामयता की प्राप्ति होवे।

इणमेव परं हवे झाणं जिससे, इन चेष्टादिकों से ध्यान होता है।।**५६**।।

भावार्थ :-

आत्मा में स्थिर होने के लिए अर्थात् परम ध्यान को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों का परित्याग करना आवश्यक है। अतः ध्याता कुछ भी चिन्तन न करें, कुछ भी न बोलें और किसी प्रकार चेष्टा न करें।।**५६**।।

पाठभेद :-

किंचि = किं वि हवइ = हवे।।**५६**।।

उत्थानिकार्थ :-

ग्रन्थकार औद्धत्यपरिहारं कुर्वन्नाह-

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं।।५८।।

टीका :-

सोधयंतु शुद्धं कुर्वन्तु, के ते? **मुणिणाहा** मुनिनाथाः, किं तत्? **दव्वसंगहमिणं** द्रव्यसंग्रहमिमं, किं विशिष्टः? **दोससंचयचुदा** रागद्वेषादिदोषसङ्घातच्युता वचनागोचरा।

तत्तिदयरदा = तत्तियणिरदा।।**५७।।**

विशेष :-

उत्थानिका अशुद्ध प्रतीत होती है। उत्थानिकार्थ में उत्थानिका के केवल भावार्थ को ही ग्रहण किया गया है।।**५७।।**

उत्थानिकार्थ :-

ग्रन्थकार आत्मगर्व का परिहार करते हुए कहते हैं -

गाथार्थ :-

तणुसुत्तधरेण अल्प श्रुतज्ञान के धारी, **णेमिचंद मुणिणा** नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा **जं** जो **इणं** यह **दव्वसंगहं** द्रव्यसंग्रह **भणियं** कहा गया है, उसे **सुदपुण्णा** शास्त्रों के ज्ञाता, **दोससंचयचुदा** समस्त दोषों से रहित, **मुणिणाहा** मुनिराज **सोधयंतु** शुद्ध करें।।**५८।।**

टीकार्थ :-

सोधयंतु शुद्ध करें। कौन शोधन करें? **मुणिणाहा** मुनिनाथ, किसका शोधन करें? **दव्वसंगहमिणं** इस द्रव्यसंग्रह का।

कैसे हैं वे शोधनकर्त्ता? **दोससंचयचुदा** राग-द्वेषादि दोषसमूह से विरहित, वचनागोचर हैं।।**५८।।**

विशेष :-

टीका अपूर्ण है। अतः मैं यह टीका स्वयं लिख रहा हूँ-(सम्पादक)

अल्पश्रुतधरनेमिचन्द्रमुनिना कथितं इदं द्रव्यसंग्रहग्रन्थं श्रुतपूर्णा दोषसञ्चय-च्युताः मुनिनाथा शोधयन्तु।

अर्थ :-

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तिदयरदा तल्लद्धीए सदा होह।।५७।।

टीका :-

तम्हा तत्तिदयरदा तस्मात् तत्त्रितयरता दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपराताः। किमर्थम्? **तल्लद्धीए** तस्य रत्नत्रयस्य लब्धिस्तस्यैव अथवा तस्य परमपदस्य लब्धिः। **सदा होह** सर्वकालं भवत यूयम्। कस्मात्? **जम्हा** यस्मात्, **चेदा झाणरहधुरंधरो हवे** आत्माध्यानरथधुरन्धरो भवेत्। कथम्भूतः सन्? **तवसुदवदवं** तपः श्रुतव्रतवान्।

उत्थानिका :-

महात्माओं को ऐसे रत्नत्रयात्मक भावों की भावना करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं-

गाथार्थ :-

जम्हा क्योंकि **तवसुदवदवं** तप, श्रुत और व्रतों से सम्पन्न **चेदा** आत्मा **झाणरहधुरंधरो** ध्यानरूपी रथ को धारण करने में समर्थ **हवे** होता है। **तम्हा** इसीलिए **तल्लद्धीए** उस ध्यान की प्राप्ति के लिए **सदा** हमेशा **तत्तिदयरदा** उन तीनों में लीन **होह** होओ।।**५७।।**

टीकार्थ :-

तम्हा तत्तिदयरदा इसीलिए उन तीनों में लीन, दर्शन-ज्ञान और चारित्रस्वरूप में रत, किस प्रयोजन के लिए? **तल्लद्धीए** उस रत्नत्रय की लब्धि अथवा उस परम पद की लब्धि। **सदा होह** आपको सर्वदा होवे। किसलिए? **जम्हा** इसलिए कि **चेदा झाणरहधुरंधरो हवे** आत्मा ध्यानरथ का धुरन्धर होता है। कैसा होता हुआ? **तवसुदवदवं** तप, श्रुत और व्रत वाला होते हुए।।**५७।।**

भावार्थ :-

ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने में वही आत्मा समर्थ होता है, जो तप, श्रुत और व्रत को धारण करता है। इसीलिए उस ध्यान को प्राप्त करने के लिए उन तीनों में (तप, श्रुत एवं व्रत) में तुम लीन होओ।।**५७।।**

पाठभेद :-

लिपिकार कृत प्रशस्ति

इति द्रव्यसंग्रहटीकावचूरि सम्पूर्णः। संवत् १७२१ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पञ्चमीदिवसे पुस्तिका लिखापितं सा. कल्याणदासेन।

।।इति।।

अल्पश्रुतधर नेमिचन्द्र मुनि द्वारा कथित इस द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ का श्रुतपूर्ण, दोषसंचय से रहित मुनिनाथ शोधन करें।।५८।।

भावार्थ :-

अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनिराज ने जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ लिखा है, उसका संशोधन श्रुतज्ञान से सम्पन्न, दोषों से रहित मुनिराज करें।।५८।।

इस प्रकार द्रव्यसंग्रह की अवचूरि टीका पूर्ण हुई। संवत् १७२१ में चैत्रमास के शुक्लपक्ष में पंचमी तिथि के दिन यह पुस्तक कल्याणदास के द्वारा लिखी गई।

परम पूज्य मुनिकुंजर, चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) के पट्टाधीश परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज के पट्टाधीश, परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के परम शिष्य परम पूज्य शब्दशिल्पी, विद्या-वाचस्पति, पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज की शिष्या गणिनी-आर्यिका सुविधिमती ने इस ग्रन्थ का अनुवाद पूर्ण किया।

शुभं भूयात्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

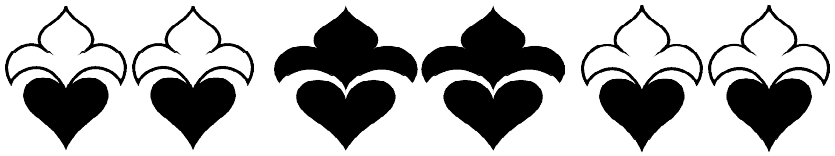

परिशिष्ट = १

गाथानुक्रमणिका

गाथा	गाथांक
अज्जीवो पुण णेओ	१५
अट्ठचदुणाणदंसण	६
अणुगुरुदेहपमाणो	१०
अवगासदाणजोग्गं	१९
असुहादो विणिवित्ती	४५
आसवदि जेण कम्मं	२९
आसवबंधणसंवर	२८
उवओगो दुवियप्पो	४
एयपदेसो वि अणू	२६
एवं छब्भेयमिदं	२२
गइपरिणयाण धम्मो	१७
चेदणपरिणामो जो	३४
जह कालेण तवेण य	३६
जावदियं आयासं	२७
जीवमजीवं दव्वं	१
जीवादी सद्दहणं	४१
जीवो उवओगमओ	२
जो रयणत्तयजुत्तो	५३
जं किंचिवि चिंतंतो	५५
जं सामण्णं गहणं	४३
ठाणजुदाण अहम्मो	१८
णट्ठ चदुघाइकम्मो	५०
णट्ठट्ठकम्मदेहो	५१
णाणावरणादीणं	३१
णाणं अट्ठवियप्पं	५
णिक्कम्मा अट्ठगुणा	१४
तवसुद्धवदवं चेदा	५७
तिक्काले चदुपाणा	३
दव्वपरिवट्टरूवो	२१

गाथा	गाथांक
दव्वसंगहमिणं	५८
दुविहं पि मोक्खहेउं	४७
दंसणणाणपहाणे	५२
दंसणणाणसमग्गं	५४
दंसणपुव्वं णाणं	४४
धम्मधम्माकालो	२०
पणतीससोलछप्पण	४९
पयडिट्ठिदिअणुभाग	३३
पुग्गलकम्मादीणं	८
पुढविजलतेउवाऊ	११
बज्झदि कम्मं जेण दु	३२
बहिरब्भंतरकिरिया	४६
मग्गणगुणठाणेहि य	१३
मा चिट्ठह मा जंपह	५६
मा मुज्जह मा रज्जह	३८
मिच्छत्ताविरदिपमाद	३०
रयणत्तयं ण वट्टइ	४०
लोयायासपदेसे	२२
वण्णरस पंच गंधा	७
वदसमिदीगुत्तीओ	३५
ववहारा सुहदुक्खं	९
सद्धो बंधो सुहुमो	१६
समणा अमणा णेया	१२
सव्वस्स कम्मणो जो	३७
सुहअसुहभावजुत्ता	३८
संति जदो तेणेदे	२४
सम्मद्दंसणणाणं	३९
संसयविमोहविब्भम	४२
होंति असंखा जीवे	२५

परिशिष्ट = २

उद्धृत पद्यानुक्रमणिका

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया जीवा एगेंदिया णेया।। **(गाथा = १२)**

गइ इंदिये च काए जोए वेए कसायणाणे य।
संयमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णि आहारे।। **(गाथा = १३)**

णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो।
जोण्हा वच्छगओ सो जोई णत्थित्ति संदेहो।। **(गाथा = ४६, ५५)**

तद्ब्रूयात् तत्परान् पृच्छेत्, तदिच्छेत् तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं, त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।। **(गाथा = ५६)**

दाणे लाहे भोए उवभोए वीरिए य सम्मत्ते।
दंसणणाणचरित्ते एदे णव जीवसब्भावा।। **(गाथा = १३)**

पंच वि इंदियपाणा मणवचिकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दहपाणा।। **(गाथा = १)**

मूलशरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घादयं णाम।। **(गाथा = १०)**

वेयणकसायविउव्वण तह मारणंतिओ समुग्घाओ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु।। **(गाथा = १०)**

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा हुंति सिद्धाणं।। **(गाथा = १४)**

सूक्ष्मद्रव्यादभिन्नाश्च, व्यावृत्ताश्च परस्परम्।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते, जलकल्लोलवज्जले।। **(गाथा = १४)**

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।। **(गाथा = ४९)**

परिशिष्ट = ३

ग्रन्थकर्त्ता कौन ?

लेखक

पण्डितप्रवर प्रोफेसर गोकुलचन्द जी जैन

द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा में ग्रन्थकार का नाम नेमिचन्द्र मुनि आया है।

गाथा इस प्रकार है–

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं।।

तिलोयसारो अथवा त्रिलोकसार के अन्त में निम्नलिखित गाथा उपलब्ध है –

इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
रइओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया।।

द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार की उक्त गाथाओं से स्पष्ट है कि दोनों ग्रन्थ एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध हैं। दोनों में वे अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए स्वयं को अल्पश्रुतधर कहते हैं।

द्रव्यसंग्रह में वे पूर्णश्रुतधारी मुनिनाथों से द्रव्यसंग्रह को संशोधित कर लेने की प्रार्थना करते हैं और त्रिलोकसार में बहुश्रुत आचार्यों से क्षमायाचना करते हैं। त्रिलोकसार में नेमिचन्द्र ने अपने को अभयनन्दी का शिष्य कहा है।

उक्त ग्रन्थों की तरह लब्धिसार में भी **अप्पसुदेण णेमिचंदेण** (गाथा = ६४८) पद आया है।

गोम्मटसार नाम से प्रसिद्ध **गोम्मटसंगहसुत्त** की अनेक गाथाओं में ग्रन्थकर्त्ता नेमिचन्द्र और उनके गुरुजन आदि का उल्लेख है। इसी ग्रन्थ में वह बहुचर्चित गाथा है, जिसके आधार पर नेमिचन्द्र को सिद्धान्त चक्रवर्ती अभिहित किया जाता है।

गाथा इस प्रकार है –

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं।।

(गोम्मटसार कर्मकाण्ड = ३९७)

द्रव्यसंग्रह या दव्वसंगहो, त्रिलोकसार या तिलोयसारो तथा गोम्मटसार या गोम्मटसंगहसुत्तं एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध माने जाते रहे हैं; किन्तु ब्रह्मदेववृत संस्कृत टीका के प्रकाशन के बाद टीका के सन्दर्भों के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार को त्रिलोकसार आदि के कर्त्ता से भिन्न सिद्ध करने की शुरुआत हुई। अलग गुरु-शिष्य परम्परा का भी अनुमान किया गया, यहाँ तक कि **तणुसुत्तधर** का अर्थ आंशिक श्रुतज्ञान का धारक न करके **अल्पज्ञ** कर लिया गया। यहाँ इस विषय पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त नहीं है, तथापि इस भ्रम के मूल कारण पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

द्रव्यसंग्रह के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने टीका के प्रस्तावना वाक्य में लिखा है कि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने मालवा के धारा नगर के अधिपति भोजदेव के श्रीपाल नामक मण्डलेश्वर के आश्रम नगर में मुनिसुव्रत चैत्यालय में सोम नामक राजश्रेष्ठी के निमित्त पहले छब्बीस गाथाओं का **लघुद्रव्यसंग्रह** बनाया। बाद में विशेष तत्त्वज्ञान के लिए **बृहद्द्रव्यसंग्रह** की रचना की।

ब्रह्मदेव ने अपनी इस जानकारी का कोई आधार नहीं दिया। छब्बीस गाथाओं को **लघुद्रव्यसंग्रह** तथा अट्ठावन गाथाओं को **बृहद्द्रव्यसंग्रह** नाम ब्रह्मदेव का दिया हुआ है। **लघुद्रव्यसंग्रह** नाम से वर्तमान में प्रचलित कृति के विषय में निम्नलिखित तथ्य विशेषरूप से ध्यातव्य हैं-

१. ग्रन्थकार ने इसे **लघुद्रव्यसंग्रह** या **द्रव्यसंग्रह** नाम न देकर **पयत्थलक्खण** कहा है।

२. इसकी उपसंहार इस गाथा प्रकार है-

सोमच्छलेण रइया पयत्थलक्खणकराउ गाहाओ।
भव्वुरयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण।।

इस गाथा में ग्रन्थ के नाम के साथ इसके कर्त्ता को नेमिचन्द्र गणि बताया गया है और सोमच्छलेण पद के व्दारा सोमश्रेष्ठी का भी उल्लेख किया गया है।

३. इस ग्रन्थ की गाथाओं में से दो गाथाएँ (बारह और चौदह) पूरी तथा आठ और ग्यारह का पूर्वार्द्ध अट्ठावन गाथाओं वाले द्रव्यसंग्रह की गाथाओं से मिलता है। शेष सभी गाथाएँ भिन्न हैं।

४. द्रव्यसंग्रह पर लिखी ब्रह्मदेव की वृत्ति विद्वत्तापूर्ण है, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि द्रव्यसंग्रह को सोमश्रेष्ठी के निमित्त लिखे जाने का भ्रम छब्बीस गाथाओं वाले नेमिचन्द्र गणि के **पदार्थलक्षण** की उपयुक्त गाथा से उत्पन्न होता है। दोनों की गाथाओं तथा ग्रन्थकर्त्ता को एक व्यक्ति मान लेने पर ब्रह्मदेव द्वारा नेमिचन्द्र गणि के विषय में ज्ञात सूचनाओं को द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के साथ भी जोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य की बात नहीं।

५. इस सन्दर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि द्रव्यसंग्रह पर लिखी प्रभाचन्द्र की प्रस्तुत संस्कृत अवचूरि में ब्रह्मदेव की वृत्ति की तरह कोई भी उल्लेख नहीं है।

६. ब्रह्मदेव की टीका के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के विषय में विचार करने वाले विद्वानों ने त्रिलोकसार तथा लब्धिसार के ऊपर उद्धृत सन्दर्भों को सर्वथा छोड़ दिया है।

७. वसुनन्दी द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र को नामसाम्य के कारण द्रव्य-संग्रह का कर्त्ता मान लेने का सुझाव प्रमाणों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हो सकता। दोनों की गुरु-परम्परा भिन्न है। वसुनन्दी द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र के गुरु नयनन्दी हैं तथा त्रिलोकसार के उल्लेख के अनुसार द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र अभयनन्दी के शिष्य हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश **सुदंसणचरिउ** के रचयिता नयनन्दी माणिक्यनन्दी के शिष्य हैं तथा वसुनन्दी द्वारा उल्लिखित नयनन्दी श्रीनन्दी के शिष्य हैं। वसुनन्दी कृत प्राकृत **उवासयाज्झयणं** तथा नयनन्दी कृत अपभ्रंश **सुदंसणचरिउ** में प्रशस्तियाँ उपलब्ध हैं। इसीलिए उनके विवरणों में किसी प्रकार के विवाद की स्थिति नहीं है।

८. ब्रह्मदेव की टीका में नेमिचन्द्र को जहाँ **सिद्धान्तिदेव** कहा है, वहीं अनेक स्थलों पर उन्हें **भगवन्** जैसे पदों से भी सम्बोधित किया है। पारस्परिक सिद्धान्तों के संरक्षण के लिए विशेषरूप से प्रयत्नशील आचार्यों के लिए प्रयुक्त **सिद्धान्तिदेव** एक गरिमामय अभिधान है।

९. द्रव्यसंग्रह अवचूरि टीका में नेमिचन्द्र को महामुनि सिद्धान्तिक कहा गया है।

१०. उक्त तथ्यों के आलोक में यह कहना उपयुक्त होगा कि द्रव्यसंग्रह के कर्त्ता, समय, स्थान, गुरु-शिष्यपरम्परा के विषय में ब्रह्मदेव के विवरण के समर्थक अन्य पुष्ट प्रमाण जब तक उपलब्ध नहीं हो जाते, तब तक ऐसे महत्तवपूर्ण ऐतिहासिक विषयों पर कल्पना और अनुमान के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करना उचित नहीं है।

द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार के रचयिता को एक मानने का स्पष्ट आधार उपलब्ध है ही।

११. ब्रह्मदेव की टीका के विषय में श्री एस. सी. घोषाल ने द्रव्यसंग्रह की अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में विचार करने के बाद लिखा है-

Thus it is clear that the commentator, Brahmadeva, was born several centuries after Nemichandra, Consequently, the statement which he makes about the composition of works by Nemichandra must be read with caution and accepted only when the same are confirmed by other proofs. Keeping this fact in view, we are not inclined to accept without any further evidence, the statement made by Brahmadeva.

इस प्रकार द्रव्यसंग्रह तथा त्रिलोकसार आदि के कर्त्ता एक ही नेमिचन्द्र हैं-यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। नेमिचन्द्र का समय उनके ग्रन्थों, शिलालेखों तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर शक संवत् ९०० ईस्वी सन् ९७८ निश्चित् किया गया है। वे गंगवंशी राजा रायमल्ल के प्रधान सेनापती चामुण्डराय के गुरु थे। विशेष विवरण के लिए गोम्मटसार आदि की प्रस्तावना द्रष्टव्य है।

परिशिष्ट = ३

ग्रन्थकर्त्ता कौन ?

लेखक

पण्डितप्रवर डॉक्टर नेमिचन्द जी जैन

अभी तक यह धारणा चली आ रही थी कि द्रव्यसंग्रह या बृहद्-द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती हैं। पर अब नये प्रमाणों के आलोक में यह मान्यता परिवर्तित हो गई है। अब समीक्षक विद्वानों का अभिमत है कि द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव या नेमिचन्द्र मुनि हैं।

बृहद्द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ग्रन्थ का परिचय देते हुए लिखा है -

अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपतिराजभोजदेवाभिधानकलिकाल-चक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपालमण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्री मुनिसुव्रत तीर्थङ्करचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीत-नारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेद-रत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारि-सोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभि-र्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद् विशेष-तत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रह-स्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वे वृत्तिः प्रारभ्यते।

मालवा नामक देश में धारा नामक नगर के स्वामी राजा भोजदेव नामक कलिकाल-चक्रवर्ती सम्बन्धी जो श्रीपाल मण्डलेश्वर थे, उन सम्बन्धी आश्रम नाम नगर में श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के चैत्यालय में शुद्ध ऐसा जो आत्मरूप द्रव्य है, उसके ज्ञान से उत्पन्न ऐसा जो सुखरूपी अमृतरस, उसके आस्वाद से विपरीत ऐसे जो नरकगति आदि सम्बन्धी दुःख हैं, उनके भय से डरा हुआ, परमात्मा की भावना से उत्पन्न सुखरूपी अमृतरस का पान करने की इच्छा रखने वाला, भेद-अभेद रत्नत्रय अर्थात् व्यवहार और निश्चय इन दो भेदों का धारक जो सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय है उसकी भावना है प्यारी जिसके, भव्यजनशिरोमणि तथा भाण्डागार (खजाना) आदि अनेक नियोगों का (कामों का) स्वामी ऐसा जो श्री सोम नामक राजश्रेष्ठी (राजा का सेठ) था, उसके निमित्त श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने पहले छब्बीस गाथासूत्रों से लघुद्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ रच कर तत्पश्चात् विशेष तत्त्वों के जानने के लिए जो बृहद्द्रव्यसंग्रह नामक शास्त्र निर्मित किया, उस बृहद्द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ की अधिकारशुद्धिपूर्वकता से अर्थात् पहले अधिकारों के छाँट कर तत्पश्चात् वृत्ति को अर्थात् व्याख्या (विशेष वर्णन) को प्रारम्भ करता हूँ।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि बृहद्द्रव्यसंग्रह और लघुद्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव हैं।

श्री डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया ने द्रव्यसंग्रह की प्रस्तावना में नेमिचन्द्र नाम के विद्वानों का उल्लेख किया है।

इनके मतानुसार प्रथम नेमिचन्द्र गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार और क्षपणासार जैसे सिद्धान्त ग्रन्थों के रचयिता हैं।

इनकी उपाधि सिद्धान्त-चक्रवर्ती थी और गंगवंशी राजा रायमल्ल के प्रधान सेनापति चामुण्डराय के गुरु भी थे। इनका अस्तित्वकाल वि. १०३५ या ई. सन् ९७८ के पश्चात् है।

द्वितीय नेमिचन्द्र वे हैं, जिनका उल्लेख वसुनन्दी सिद्धान्तिदेव ने अपने **उपासकाध्यन** में किया है और जिन्हें जिनागमरूप समुद्र की वेला-तंरगों से धुले हृदय वाला तथा सम्पूर्ण जगत में विख्यात लिखा है -

सिस्सो तस्स जिणागम जलणिहि वेलातरंगधोयमणो।
संजाओ सयल जए विक्खाओ णेमिचंदु त्ति।।
तस्स पसाएण मए आइरियपरंपरागयं सत्थं।
वच्छल्लयाए रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं।।

इन नेमिचन्द के नयनन्दी गुरु थे और वसुनन्दी सिद्धान्तिदेव शिष्य।

तृतीय नेमिचन्द्र वे हैं, जिन्होंने सिद्धान्त-चक्रवर्ती नेमिचन्द्र के **गोम्मटसार** पर **जीवतत्त्वप्रदीपिका** नाम की केशववर्णी की संस्कृत मिश्रित कन्नड टीका के आधार पर रची।

चतुर्थ नेमिचन्द्र सम्भवतः द्रव्यसंग्रह के रचयिता हैं। अत एव प्रथम और तृतीय नेमिचन्द्र को तो नहीं कह सकते। ये दोनों दो व्यक्ति हैं। सिद्धान्त-चक्रवर्ती मूल ग्रन्थकार हैं और तृतीय नेमिचन्द्र टीकाकार हैं। प्रथम नेमिचन्द्र का समय वि. की ११ वीं (ई. स. ११) शताब्दी है और तृतीय का ई. सन् की १६ वीं शताब्दी। अतः इन दोनों नेमिचन्द्रों के पौर्वापर्यय में ५०० वर्षों का अन्तराल है।

इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय नेमिचन्द्र भी एक नहीं हैं। प्रथम नेमिचन्द्र वि. की ११वीं शताब्दी में हुए हैं तो द्वितीय उनसे १०० वर्ष बाद वि. की १२ वीं शताब्दी में, क्योंकि द्वितीय नेमिचन्द्र वसुनन्दी सिद्धान्तिदेव के गुरु थे और वसुनन्दी का समय वि.सं.११५० के लगभग है। इन दोनों नेमिचन्द्रों की उपाधियाँ भी भिन्न हैं। प्रथम की उपाधि सिद्धान्त-चक्रवर्ती हैं तो द्वितीय की सिद्धान्तिदेव।

प्रथम और चतुर्थ नेमिचन्द्र भी भिन्न हैं। प्रथम अपने को सिद्धान्त - चक्रवर्ती कहते हैं तो चतुर्थ अपने को तनुसूत्रधर।

बृहद्द्रव्यसंग्रह के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने द्रव्यसंग्रहकार को सिद्धान्तिदेव लिखा है, सिद्धान्त-चक्रवर्ती नहीं।

अत एव हमारी दृष्टि में द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव हैं।

पण्डित आशाधर जी ने वसुनन्दी सिद्धान्तिदेव का सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत दोनों ही टीकाओं में उल्लेख किया है और वसुनन्दी ने इन सिद्धान्तिदेव का अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है तथा इन्हें श्रीनन्दी का प्रशिष्य एवं नयनन्दी का शिष्य बतलाया है। ये नयनन्दी यदि **सुदंसणचरिउ** के रचयिता हैं, जिसकी रचना उन्होंने भोजदेव के राज्यकाल में वि. सं. ११०० में की थी तो नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव नयनन्दी से कुछ ही उत्तरवर्ती और वसुनन्दी से कुछ पूर्ववर्ती अर्थात् वि. सं. ११२५ के लगभग के विद्वान सिद्ध होते हैं। पण्डित आशाधर जी ने द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र का उल्लेख किया है। अत एव वसुनन्दी सिद्धान्तिदेव के गुरु द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ही होंगे।

पूज्या बाल-ब्रह्मचारिणी, गणिनी-आर्यिकाश्री सुविधिमती माताजी का संक्षिप्त

जीवन-परिचय

महाराष्ट्र प्रान्त संयमियों के जन्म और तप के कारण से अतिशय पवित्र हुआ है। उसमें भी खानदेश की चर्चा करे तो धार्मिक संस्कारों के कारण यह भूखण्ड और भी अधिक पुनीत है। इसी खानदेश में सोनगिर नामक एक नगर है। विशाल जिनालय इस नगर के वातावरण में पावनता का संचार करता है तो पहाड़ी तथा तालाब इस नगर की शोभा को सहस्रगुणित करते हैं। सोनगिर में धर्मानुरागी श्री वसन्तिलाल जी जैन निवास करते थे। उनके पास बहुत अधिक धन तो नहीं था, किन्तु संकल्पशक्ति और पुरुषार्थ की बलवत्ता थी। उनकी धर्मपत्नी का नाम ताराबाई था। वह तो सदाचार की साक्षात् मूर्ति ही थी। सरलता उनके रोम-रोम में भरी हुई थी। सुसंस्कारों से सम्पन्न यह दम्पत्ति चार पुरुषार्थों का सेवन करते हुए अपने जीवनकाल को व्यतीत कर रहे थे। उनके पुण्यप्रताप से उन्हें पाँच पुत्रियाँ और दो हुए। इस दम्पती ने अपने पुत्रियों को संस्कार -रूपी सम्पत्ति प्रदान की चरितनायिका भी उनकी सुपुत्री हैं।

दिनांक १७-१०-१९६६ में चरितनायिका का जन्म हुआ। परिवार ने बालिका का नाम **शीला** रखा। कहते हैं कि भविष्यत् कालीन संकल्पना बचपन में ही अंकुरित होने लगती है। शीला का बचपन इसमें अपवाद नहीं था। दादी ने भी अपनी पोती को धार्मिक संस्कारों से पूरित करने का प्रयत्न किया।

भवितव्यता बलवती-यह उक्ति व्यर्थ कैसे हो सकती है? शीला को अपनी नानी की सेवा के लिए उनके पास रहना पड़ा। यह काल शीला के लिए वरदानरूप ही बना। शीला ने अपना लौकिक अध्ययन ननिहाल (वरखेड़ा) में ही पूर्ण किया। शीला ने दसवीं कक्षापर्यन्त अध्ययन किया। ननिहाल में गृह-चैत्यालय था। नानी को अभिषेक दिखाना, पूजा करने में सहयोग करना आदि कार्य शीला ने सम्हाल लिया। वह नाना और नानी को शास्त्र पढ़ कर सुनाया करती थी। नानी के लिए शुद्ध भोजन तैयार करने वाली शीला स्वयं भी शनैः शनैः शुद्ध भोजन करने लगी।

जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन-यह लोकोक्ति अक्षरशः सत्य हुई। शीला भी व्रतों की ओर अग्रसर होने लगी। शीला ने छोटी-सी आयु में ही रात्रिभोजन और जमीनकन्द का त्याग कर दिया। वह देवदर्शन और पूजन के बिना पानी भी नहीं पीती थी। जब भी नगर में किसी साधुसंघ का आगमन हुआ करता था, शीला उन्हें आहार देकर ही भोजन किया करती थी। इन्दौर नगरी में शीला ने परम पूज्य आचार्य-शिरोमणि, श्री सन्मतिसागर जी महाराज से आजीवन शूद्रजल का त्याग ग्रहण कर लिया। परम पूज्य मुनिश्री केशवनन्दी महाराज और आर्यिकाश्री कुलभूषणमती माताजी के आहार-विषयक कठोर नियम थे। अतः जब तक उनका संघ खानदेश में रहा, शीला ने उनकी परिचर्या की।

१९९१ के प्रारम्भ में परम पूज्य मुनिश्री सुविधिसागर जी महाराज का विहार खानदेश में हो रहा था। एक दिन शीला मुनिश्री के श्रीचरणों की वन्दना करने गई।

शीला को ज्ञात हुआ कि मुनिश्री आजीवन शूद्रजल का त्याग कर चुके श्रावकों से ही आहार ग्रहण करते हैं। शीला ने उनसे उन्हें आपना परिचय देकर कहा कि मैंने गुरुदेव से आजीवन शूद्रजल का त्याग किया हुआ है। मेरी कुल और जाति भी शुद्ध है। आपको आहार देने की मेरी इच्छा है। क्या मैं आपको आहार दे सकती हूँ?

मुनिश्री ने पूछा-क्या तुमने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत भी ग्रहण किया है? शीला ने कहा-नहीं। मुनिश्री ने कहा कि जिस कन्या का आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत नहीं हो, उस कन्या से मैं आहार नहीं ले सकता। यदि तुम्हारा विवाह हुआ तो तुम व्रतों का परिपालन कर सकोगी-इसमें सन्देह है।

शीला ने कहा कि यदि ऐसा है तो आप मुझे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिये। मुनिश्री ने कहा कि यह व्रत त्रिलोकपूज्य है। इसे प्रदान करने से पूर्व हमें विचार करना पड़ेगा और तुम्हें भी अपने परिवार से स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ेगी। इस कार्य में समय तो आवश्य लगेगा, तब

तक तुम आहार नहीं दे सकोगी। मोक्षपुरुषार्थ की सिद्धि के अभिलाषी जीव व्रतों से भयभीत कब हुए हैं? शीला भी व्रत के प्रति उत्साहित थी। फलतः उसने मुनिश्री के चरणों में ६-२-१९९१ को कुसुम्बा नगरी में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया। यद्यपि आप तत्काल दीक्षा को ग्रहण करना चाहती थी, किन्तु नानी की परिचर्या को लक्ष्य में रख कर आप पुनः घर लौट आई।

मुनिश्री ने १९९२ में सोनगिर नगरी में वर्षायोग करने का निश्चय किया। वसन्तिलाल जी ने अपनी पुत्री को समाचार किए कि जब तक मुनिश्री अपनी नगरी में रहते हैं, तब तक उनकी सेवा करने के लिए तुम भी यहाँ आ जाओ। पिताजी के समाचार को प्राप्त कर शीला ननिहाल से अपने जन्मनगरी में आ गई।

शीला ने गुरुचरणों में रह कर अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उसने वर्षायोग के काल में गुरुमुख से **तत्त्वार्थसूत्र** और **संस्कृत व्याकरण** का अध्ययन किया। वह **प्रवचनसार** और **राजवार्तिक** की वाचना में भी सम्मिलित हुई। घर में तो आप औपचारिकता के वश ही रह रही थी। सारा दिन गुरुचरणों में ही व्यतीत हो रहा था। आप ज्ञानसाधना के साथ-साथ चारित्राराधना की ओर भी ध्यान देने लगी। वर्षायोग में ही आपने बारह व्रतों को अंगिकृत कर लिया।

दशलक्षण पर्व का शुभारम्भ हुआ। आपने दस उपवास का संकल्प कर लिया। उस समय आपकी नानी भी वहीं पर आ गई। आपके पारणे के उपरान्त नानी अत्यन्त अस्वस्थ हो गई। एक दिन आहार के उपरान्त मुनिश्री आपके निवेदन से नानी जी को आशीर्वाद प्रदान करने के लिए आपके घर आए। मुनिश्री ने **आचार्यश्री दुर्गदेव जी महाराज** के द्वारा लिखे हुए **रिष्टसमुच्चय** नामक ग्रन्थ का अध्ययन किया हुआ था। नानी को देखते ही मुनिश्री ने जान लिया कि अब उनकी आयु अतिशय अल्प अवशिष्ट है।

मुनिश्री ने शीला से कहा कि इनकी आयु चन्द घण्टों की रह गई है। इनकी दीक्षा करा दी जाय तो सल्लेखना विधि का अनुष्ठान कराया जा सकता है। शीला ने गुरु के आदेश को स्वीकार कर अपने परिवार से सल्लेखना के विषयक चर्चा की। परिवार के सदस्य इस कार्य के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। उन्होंने कहा-मुनिश्री के वचनों का कोई प्रत्यक्षप्रमाण नहीं है। यदि उनके कहे अनुसार दीक्षा दे दी जाय और उचित समय पर सल्लेखना नहीं हुई तो फिर क्या होगा? अभी तो हम इन्हें सम्हाल सकते हैं। बाद में इन्हें कौन सम्हालेगा? मुनिश्री के पास कोई आर्यिका, क्षुल्लिका अथवा ब्रह्मचारिणी भी नहीं है। आगे इनकी सेवा कौन करेगा?

शीला ने बड़ी दृढ़ता से कहा कि वे मेरे गुरु हैं। गुरु के वाक्य भगवान के वाक्यों के समान प्रामाणिक और आचरणीय होते है। अतः मैं अन्य किसी का प्रमाण की वांछा नहीं करती। यदि नानी चाहती है तो दीक्षा होनी ही चाहिए। रही बात सम्हालने की। मैं अब तक भी सेवा करती आई हूँ। आगे भी करने के लिये संकल्पबद्ध हूँ। बहुत-सी चर्चाएँ हुई। अन्ततोगत्वा यह निर्णय हुआ कि दीक्षा करवानी है।

दिनांक ३-८-१९९२ को मुनिश्री के करकमलों से वह दीक्षा भी सम्पन्न हुई। मुनिश्री ने दीक्षार्थिनि का नाम **आर्यिकाश्री सुगतमती** माताजी रखा। दीक्षा के ठीक तियालीस घण्टे के बाद (जैसा कि मुनिश्री ने पूर्व में ही घोषणा की थी) आर्यिकाश्री ने नश्वर शरीर का परित्याग किया। जिस दिन (७-८-१९९२) आर्यिकाश्री की सल्लेखना हुई, उसी दिन वसन्तिलाल जी जैन ने अपनी पुत्री को मुनिश्री के चरणों में आत्मसाधना करने के लिए सौंप दी।

वर्षायोग के उपरान्त आप मुनिश्री के साथ विहार करते हुए इन्दौर पहुँची। ३०-१-१९९३ को परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज का पचपनवाँ जन्मदिवस था। उस दिन मुनिश्री के सानिध्य में एक बृहत्स्तरीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। उस कार्यक्रम में आपने सातवीं प्रतिमा का व्रत ग्रहण किया। गुरुदेव ने आपका नाम **सुवर्णलता** रखा। इस प्रकार आप संयम की साधिका बनी।

सातवीं प्रतिमा को ग्रहण करने के उपरान्त आप गुरु के आदेश से तीर्थयात्रा के लिये गई। आपने गिरनार, सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर आदि तीर्थों की यात्रा की। यात्रा करने के उपरान्त आप गुरु-चरणों में आई और गुरु से दीक्षा प्रदान करने का निवेदन किया।

दिनांक ४-७-१९९३ को प्रातःकालीन शुभ बेला में इन्दौर के कालानी नगर में आपकी आर्यिका-दीक्षा सम्पन्न हुई।

आप सरलहृदयी हैं। गुरु-आज्ञा आपके लिए सर्वोपरि है। आप सतत ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहती हैं। गुरुचरणों का विरह आपके लिए असह्य है। दीक्षा के बाद से अब तक आप गुरु चरणों में रह कर ही आत्मसाधना कर रही है।

जब गुरुदेव ग्रन्थों का अनुवाद किया करते थे तो आप उनकी कृति की प्रतिलिपि बना कर उसे प्रकाशन योग्य बनाया करती थी। गुरुदेव के पत्रों का संकलन कर आपने ही **ए बेलगाम के घोड़े! सावधान** नामक कृति को प्रकाशित करवाया। मुनिश्री के आशीर्वाद से १९९७ में **सुविधि की ललकार (अक्षय ज्याति)** नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। गुरुदेव ने माताजी को उस पत्रिका के मार्गदर्शिका के रूप में नियुक्त किया। अब तक माताजी के मार्गदर्शन में पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है।

गुरुदेव के आदेश से आपने ग्रन्थों का अनुवाद भी प्रारम्भ किया माताजी के द्वारा अनुदित साहित्य का परिचय निम्न प्रकार से हैं-

१. सप्तव्यसनकथा :- आचार्यश्री सोमकीर्ति जी महाराज द्वारा रचित **सप्तव्यसन कथा** नामक ग्रन्थ प्रथमानुयोग का अन्वर्थ-संज्ञक ग्रन्थ है। सात अधिकारों में विभक्त इस ग्रन्थ में कुल दो हजार पचास पद्य हैं। संस्कृत भाषा में लिखे गए इस ग्रन्थ की शैली अत्यन्त रोचक है। नौ रसों के सम्यक् समायोजन के कारण ग्रन्थ अतिशय मनमोहक है। माताजी ने इस ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

२. कल्याणमाला :- विक्रम संवत् की तेरहवीं शताब्दी में पण्डितप्रवरश्री आशाधर जी नामक एक सुप्रसिद्ध विद्वान हुए। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। **कल्याणमाला** उन्हीं की एक अनुपम कृति है। इस ग्रन्थ में चौबीस तीर्थंकरों के पाँच कल्याणकों की तिथियों का विवरण पाया जाता है। संस्कृत भाषीय इस ग्रन्थ में अनुष्टुप् छन्द में लिखे हुए पैंतीस पद्य हैं। इस गन्थ का अनुवाद अब तक नहीं हुआ था। माताजी ने इस ग्रन्थ का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है।

३. दव्वसंग्गहो :- द्रव्यसंग्रह प्राकृत भाषा में लिखा गया एक बालोपयोगी ग्रन्थ है। **परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री नेमिचन्द्र जी महाराज** ने अट्ठावन गाथाओं के द्वारा इस ग्रन्थ पर **परम पूज्य आचार्यश्री ब्रह्मदेव जी महाराज** की टीका सुप्रसिद्ध ही है। जब माताजी संघ के साथ विहार करते हुए आरा पहुँची तो वहाँ उन्हें पण्डितप्रवरश्री गोकुलचन्द जी जैन ने बारहवीं शताब्दी में हुए **परम पूज्य आचार्यश्री प्रभाचन्द्र जी महाराज** के द्वारा रचित **अवचूरि** नामक संस्कृत टीका प्रदान की। इस कृति का प्रकाशन सम्पूर्णानन्द विद्यालय से हुआ है। आरा के जैन सिद्धान्त भवन में इस टीका की मूल पाण्डुलिपि भी प्राप्त हुई। इन दो प्रतियों के आधार पर माताजी ने इस ग्रन्थ का अनुवाद किया। इस टीका का हिन्दी अनुवादित कृति की दो आवृत्तियाँ औरंगाबाद से प्रकाशित हो चुकी हैं।

अपने गुरुदेव परम पूज्य परम्पराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज की पूजन और आरतियों का निर्माण भी आपके पुनीत कर-कमलों से हुआ है।

माताजी द्वारा किये गये व्रत :- माताजी निरन्तर तप और त्याग में लीन रहती हैं। माताजी ने आजीवन के लिए दही का त्याग कर रखा है। उन्होंने पत्ताभाजी और अनेक फलो का भी त्याग कर रखा है।

माताजी ने रविवार व्रत, आकाशपंचमी व्रत, सुगन्धदशमी व्रत, पंचमेरु व्रत, दशलक्षण व्रत, रत्नत्रय व्रत, णमोकार पैतीसी व्रत, जिनगुणसम्पत्ति व्रत, और श्रुतस्कंध व्रत किए हैं।

इन दिनों में माताजी चारित्रशुद्धि व्रत कर रही है।

धार्मिक प्रशिक्षण :- माताजी ने अनेक स्थानों पर बालकों को जैन तत्त्वज्ञान से परिचित कराया है। इनमें किशनगढ़, शहापुरा, पालोदा, सागवाड़ा, नागपुर, दुर्ग आदि स्थान प्रमुख हैं। आपने नागपुर में महिलाओं को आसन-प्राणायाम की शिक्षा दी।

माताजी के वर्षायोग स्थान :- माताजी ने जिस स्थान पर वर्षायोग किए, वहाँ अपनी साधना के बल से अतुलित प्रभावना की है। अब तक निम्नलिखित स्थानों पर माताजी के वर्षायोग सम्पन्न हुए हैं-

१. बडनगर (मध्यप्रदेश) १९९३ **२.** पचेवर (राजस्थान) १९९४
३. चँवलेश्वर (राजस्थान) १९९५ **४.** ब्यावर (राजस्थान) १९९६

५. किशनगढ़ (राजस्थान) १९९७ **६.** सुजानगढ़ (राजस्थान) १९९८
७. आरा (बिहार) १९९९ **८.** राँची (झारखण्ड) २०००
९. दुर्ग (छत्तीसगढ़) २००१ **१०.** नागपुर (महाराष्ट्र) २००२
११. देवलगाँवराजा (महाराष्ट्र) २००३ **१२.** ओबरी (राजस्थान) २००४
१३. मन्दसौर (मध्यप्रदेश) २००५ **१४.** केशरियाजी (राजस्थान) २००६
१५. सूरत (गुजरात) २००७ **१६.** नरवाली (राजस्थान) २००८
१७. किशनगढ़ (राजस्थान) २००९ **१८.** श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) २०१०
१९. वरसगाँव (महाराष्ट्र) २०११ **२०.** औरंगाबाद (महाराष्ट्र) २०१२
२१. कुन्थुगिरि (महाराष्ट्र) २०१३ **२२.** शमनेवाड़ी (कर्नाटक) २०१४
२३. भूतनाळ (वीजापुर-कर्नाटक) २०१४ **२४.** नसलापुर (कर्नाटक) २०१४

सभी वर्षायोग अत्यन्त प्रभावनाकारक सम्पन्न हुए।

गणिनीपद :- आपकी साधना, संघ-संचालन की कुशलता आदि अनेक गुणों को विलोक कर गुरुदेव ने आपको आपके बीसवें दीक्षादिवस के अवसर पर अर्थात् ४-५-२०१२ को मुनिसुव्रतनाथ भगवान के अतिशय क्षेत्र पैठण नगरी में आपको गणिनीपद से समलंकृत किया।

दीक्षा :- गणिनीपद का संस्कार करने के उपरान्त आचार्यश्री ने सुस्पष्ट किया था कि आगे होने वाली स्त्रीदीक्षाएँ आप ही प्रदान करेगी।

गुरुदेव के आदेश का पालन करते हुए अब तक आपने पाँच दीक्षाएँ प्रदान की हैं।

१. आर्यिकाश्री सुविधामती माताजी (------ = कुन्थुगिरि)
२. आर्यिकाश्री --मती माताजी (------ = अकिवाट)
३. आर्यिकाश्री सुमनमती माताजी (------ = भूतनाळ)
४. आर्यिकाश्री सुचित्तमती माताजी (------ = नातेपुते)
५. क्षुल्लिकाश्री सुकल्पमती माताजी (------ = नसलापुर)

माताजी की धर्मभावना, ज्ञानसाधना और चारित्र-आराधना नित्यप्रति वृद्धिगत होती रहें तथा वे अपने जगत्पूज्य आर्यिका पद का निर्दोष परिपालन करते हुये सल्लेखना के शस्त्र से स्त्रीलिंग का छेदन कर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करें-यही कामना करता हूँ।

माताजी के श्रीचरणों में विधिपूर्वक वन्दामि।

परम पूज्य विद्या-वाचस्पति, आर्षमार्ग-शिरोमणि,
तपश्चर्या-चक्रवर्ती, पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज की

मंगल आरती

(तर्ज :- माई न माई मुण्डेर पे तेरी)

आदिसूरि के तुरीय पट्टधर, सुविधि गुरु को ध्याये।
देवागमगुरुभक्त ऋषि की, मंगल आरती गाये।।
गुरुवर के चरणों में नमन, सूरिवर के चरणों में नमन**।।ध्रु।।**

उन्नीस मार्च को औरंगाबाद में, जन्म आपने पाया।
इन्दरचन्द और कंचन माँ का, हृदयकमल हरषाया।।
परिजन मिलके खुशियाँ मनाये, फूले नहीं समाये।
देवागमगुरुभक्त ऋषि की, मंगल आरती गाये।।
गुरुवर के चरणों में नमन, सूरिवर के चरणों में नमन**।।१।।**

क्षुल्लक ऐलक मुनिव्रत धर कर, धर्मध्वजा फहराई।
मूलोत्तर गुण धारण करके, ज्ञानज्योति प्रकटाई।।
जिनशासन के इस दीपक के, अतुलित गुण अपनाये।
देवागमगुरुभक्त ऋषि की, मंगल आरती गाये।।
गुरुवर के चरणों में नमन, सूरिवर के चरणों में नमन**।।२।।**

आर्षमार्ग के शिरोमणि हो, आकिंचन श्रमणेश्वर।
विद्या के तुम वाचस्पति हो, ज्ञान-ध्यानपरमेश्वर।।
चक्रवर्ती हो तपगुण के तुम, तव पद शीश नमाये।
देवागमगुरुभक्त ऋषि की, मंगल आरती गाये।।
गुरुवर के चरणों में नमन, सूरिवर के चरणों में नमन**।।३।।**

दश धर्मों के ज्ञाता सूरिवर, षट् आवश्यक धारी।
बारह तप त्रयगुप्ति के ध्याता, पंचाचारविहारी।।
सन्मतिसूरि के पद-आसीन हो, गुरुगौरव फहराये।
देवागमगुरुभक्त ऋषि की, मंगल आरती गाये।।
गुरुवर के चरणों में नमन, सूरिवर के चरणों में नमन**।।४।।**

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज का

उपलब्ध साहित्य

ग्रन्थसाहित्य	विधानसाहित्य	पाठ्यसाहित्य
अणुपेहा	श्री आदिनाथ	भगवान अनन्तवीर्य
दंसणसारो	श्री अजितनाथ	आओ, खेलें क्रिकेट
ज्ञानांकुशम्	श्री सम्भवनाथ	धर्म और संस्कृति
झाणज्झयणपाहुड	श्री अभिनन्दननाथ	धर्मचक्र
करलक्खणं	श्री चन्द्रप्रभ	एक के बाद एक
कषायजयभावना	श्री वासुपूज्य	ज्ञाननिधि क्रीड़ालय
श्री मल्लिनाथ पुराण	श्री कुन्थुनाथ	कौन बनेगा जिनवाणीनन्दन?
णाणसारो	श्री मुनिसुव्रतनाथ	कैद में फँसी है आत्मा
णयलक्खणं	श्री सम्मेदशिखर	कालसर्पयोग : एक भ्रम
नवपदार्थनिश्चय	श्री पंचकल्याणक	रहस्यों का भण्डार : महामन्त्र णमोकार
प्रमाणप्रमेयकलिका	श्री कल्याणमन्दिर	पंचकल्याणक : स्वरूप एवं विश्लेषण
प्रश्नोत्तररत्नमालिका	श्री भक्तामर	परम प्रामाणिक अनुयोग : प्रथमानुयोग
रत्नमाला	श्री तत्त्वार्थसूत्र	साँपसीढ़ी प्रतियोगिता
सज्जनचित्तवल्लभ	श्री रोटतीज व्रत	जैनधर्म में स्तुति : एक अध्ययन
संबोह पंचासिया	श्री रविव्रत मण्डल	सुविधि चिन्तनपुष्प
शासनचतुस्त्रिंशिका	श्री जिनगुणसम्पत्ति व्रत	सुविधि आसनचिकित्सा
सुगन्धदशमी कथा	श्री श्रुतस्कन्ध	सुविधि चिकित्सासार
स्वतन्त्रवचनामृतम्	श्री सुगन्धदशमी व्रत	सुविधिप्रश्नमणिमाला
सिद्धंतसारो	श्री निर्दुःखसप्तमी व्रत	स्वाध्यायक्रमदर्पण
वैराग्यमणिमाला	श्री रत्नत्रय व्रत	सुविधि वचनपराग
व्रतफलम्	श्री तपःशुद्धि	स्वास्थ्य ही जीवन
श्रीपुराण	श्री सहस्रनाम	श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला
श्री गौतमस्वामी चरित्र	श्री दर्शनविशुद्धिभावना	स्मरणशक्ति का विकास कैसे करें?
श्री सुदर्शन चरित्र	श्री कल्याणभावना	तोल मोल के बोल
दव्वणिमित्तं	श्री बाहुबली	तीर्थंकर–दर्शन

सुविधि-अष्टकम्

देवागमगुरुभक्त–विशदा कीर्तिधारकः।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं, वन्दे सुविधिसागरम्॥१॥

क्षमादि श्रेष्ठधर्माणां, ह्याचाराणां च पालकः।
शुद्धसम्यक्त्वलाभार्थं, वन्दे सुविधिसागरम्॥२॥

तपस्या चक्रवर्तीश्च, सन्मार्गस्य प्रदीपकः।
ज्ञानध्यानतपोपूतो–वन्दे सुविधिसागरम्॥३॥

षडावश्यककार्याणां, त्रिगुप्तेश्चप्रपालकः।
कामसुभटजेता त्वं, वन्दे सुविधिसागरम्॥४॥

सौम्यमूर्तिर्महाध्यानी, भव्यजीवप्रबोधकः।
हितोद्योगी मृदुभाषी, वन्दे सुविधिसागरम्॥७॥

दीक्षाशिक्षाप्रदातारं, शिष्यानामनुग्राहकः।
श्रेयोमार्गे सदारूढं, वन्दे सुविधिसागरम्॥६॥

हृदये वसते शुद्धिर्वचने च सरस्वती।
काये चरित्रधर्त्तारं, वन्दे सुविधिसागरम्॥७॥

इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं, त्रैविद्यं स्नेहपूर्वकम्।
लभते स च निर्वाणं, हीदमपि न संशयः॥८॥

रचयित्री
पूज्या बालब्रह्मचारिणी, आर्यिकाश्री
सुस्नेहमती माताजी